॥ श्रीः ॥

महामहोपाध्यायश्रीछज्जुरामविद्यासागरप्रणीतम्

शिवकथामृतं महाकाव्यम्

प्रकाशशास्त्रि एम.ए. कृत

हिन्दी-टीका सहितम्

अथ च

जीवनरामशास्त्रि प्रभाकर, एम.लिट्.

कृतयाभूमिकया ग्रन्थकारजीवनचरित्रेण

च समेतम्

सर्व-विक्रयाधिकारी

मेहरचन्द लछमनदास

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

स्ट्रीट नं० १, १ अन्सारी रोड

दरियागंज, दिल्ली-११०००६

प्रकाशक :

छज्जुराम शास्त्री

बगीची माधोदास, लाल किला, दिल्ली

प्रथम संस्करण

१९७४

मुद्रक :

मनोज प्रिंटिंग वर्क्स

कटरा बिहारीलाल, दिल्ली

॥ समर्पणम् ॥

श्रीमतां पाठककुलकमलदिवाकराणां महामहिम्नां भारतोपराष्ट्रपतीनां श्रीगोपालस्वरूपपाठकमहोदयानां करकमलयोः सादरं समर्प्यते काव्यमिदम् ।

जयतात्पाठककुलं जज्ञे यत्रोपराष्ट्रपतिः ।
श्रीगोपालो विबुधो विबुधानां मानकृत् योऽस्ति ॥

श्रीमन्नशेषगुणराशिसुधासमुद्र
गोपाल पाठककुलेन्द्र भवत्कराब्जे ।
दत्तं मया 'शिवकथामृत' काव्यमेतत्
कृत्वा कृपां सफलयाद्यनिरीक्षणेन ॥

म० म० छज्जुरामशास्त्री
विद्यासागरः
दिल्ली ।

शि
मह
के
ग्रा
वर्णि

में
वा
गा
है
हर
शि
व
उ
स
'क
नि

व
नू
श
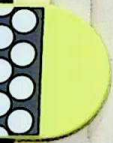
भूमिका

कथा-साहित्य अठारह पुराणों में अत्यधिक उपलब्ध होता है। उसमें शिवपुराण-कथायें अति विशाल एवं सर्वोत्कृष्ट हैं। 'शिवकथामृत महाकाव्य' इन्हीं कथाओं के आधार पर रचा गया है। साहित्यविन्दु के अनुसार महाकाव्य एक सर्गवद्ध पद्य रचना होती है। इसमें आठ से अधिक सर्ग होते हैं और एक नायक के सम्पूर्ण जीवन का चरित्र वर्णित होता है।

इस महाकाव्य के प्रणेता म०म० छज्जुराम शास्त्री उन विद्वान् कवियों में से हैं, जिनकी असाधारण कवित्वशक्ति पण्डितों को चकित करने वाली है। इनका यह महाकाव्य अति प्राचीन संस्कृति की गौरव गाथाओं को नये युग में नये स्वर में प्रस्तुत करने का एक सफल प्रयास है। यद्यपि शिवसम्वन्धी प्राचीन काव्य भी उपलब्ध होते हैं जैसे कि—हरविजय, श्रीकण्ठचरित, हरचरितचिन्तामणि, स्तुतिकुसुमाञ्जलि और शिवलीलार्णव आदि, परन्तु वे कथा-काव्य नहीं हैं। उनमें ऋतु आदि का वर्णन भरा पड़ा है और वे अतीव कठिन भी हैं, जो वर्तमान समय के लिए उपयुक्त नहीं हैं। इसी दृष्टिकोण से यह काव्य अनुष्टुप् छन्द के सरस सरल पद्यों में लिखा गया है। कविरत्न अखिलानन्द ने लिखा है—'कविरमरः कालिदासः कविरभिनन्दश्च छज्जुरामश्च। वृत्तेऽनुष्टुभि निपुणाः कृपणा अन्येषु वृत्तेषु'।

कवि ने अठारहवें सर्ग में स्वयं लिखा है—'हठादाकृष्टानां कठिन वचनानां रचयिता कविः स्पर्धालुश्चेत् सरसवचसानेन कविना। ततो नूनं स्यात् वै सुवच पद प्राप्तौ च कलहः कटूक्तेः काकस्य सरस वचसश्चापि पिकतः॥

पूज्य पिताजी ने अपने इस काव्य के सम्वन्ध में स्वयं कहा है—

यदि शिवस्तवने सरसंमनो यदि विनोदयसे चरितैः प्रभोः।
यदमृत स्वदनेऽवितथा स्पृहा तदुपकर्णय शैव कथा इमाः॥

जिन महानुभावों ने इस महाकाव्य के प्रकाशन में सहयोग दिया है उनका मैं धन्यवाद करता हूं—विशेषतः पिताजी के प्रियशिष्य प्रकाश शास्त्री एम. ए. जिन्होंने इस काव्य की टीका लिखी ।

जीवनराम शास्त्री

म०म० छज्जुराम शास्त्री विद्यासागर

आपका जन्म हरियाणा की पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि के अन्तर्गत शेखुपुरा लावला ग्राम में विक्रम सं० १९५२ में हुआ था। सं० १९८३ में आप सपरिवार रिटोली ग्राम में आ गये। आपने अपने चाचा वैयाकरण केशरी पं० शिवदत्त जी से अमरकोष पढ़ते समय कुरुक्षेत्र स्थानेश्वर नगर में सूर्यग्रहण के मेले पर पट्शास्त्री पं० गरुड़ध्वज जी द्वारा कुछ पूछने पर पट्शास्त्री होने का आशीर्वाद प्राप्त किया। भविष्य में वैसा ही हुआ। आपने मुजफ्फरनगर (यू० पी०) में पं० परमानन्द शास्त्री से और अमृतसर (पंजाब) में पं० हीरालाल जी शास्त्री से भाष्यान्त व्याकरण पढ़ा। अमृतसर में ही गोपाल भट्टाचार्य जी से न्यायशास्त्र पढ़ा। बाद में हरियाणा के भिवानी नगर में विद्यामार्तण्ड पं० सीताराम जी शास्त्री से निरुक्त और न्यायादि दर्शन पढ़े। ईस्वी सन् १९१८ में आपने पंचनदीय शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके अनन्तर आपने प्रधानाचार्य पद पर रहते हुए जीन्द, महेन्द्रगढ़, लायलपुर, थानेश्वर और दिल्ली आदि नगरों के महाविद्यालयों में चालीस वर्ष तक अध्यापन-कार्य किया। काशी में भी आपने पढ़ाया। आपके पढ़ाये हुए अनेक शास्त्री और आचार्य अध्यापन कार्य कर रहे हैं। बीसों वर्ष तक आप पंचनदीय शास्त्री परीक्षा के मुख्य परीक्षक रहे।

दिल्ली में सं० १९०५ में आपके द्वारा संस्कृत प्रचारक मण्डल की स्थापना हुई। तबसे आप ही मण्डल के अध्यक्ष हैं। अब तक आपने संस्कृत प्रचारक मण्डल के छब्बीस महाधिवेशन किये, जिनके अध्यक्ष-पद को सर्वश्री जगद्गुरु शंकराचार्य कृष्णबोधाश्रम, अनेक महामण्डलेश्वर, अनेक महामहोपाध्याय, त्यागमूर्ति गोस्वामी गणेशदत्तादि सनातनधर्म के नेता, श्री लालबहादुर शास्त्री, श्री मोरारजी देसाई, श्री अनन्तशयन आयङ्गर, श्री कालुलाल श्रीमाली, श्री आदित्यनाथ झा, श्री बालेश्वर प्रसाद आदि गण्यमान्य सरकारी अधिकारी अलंकृत करते रहे।

दिल्ली में आपने अपने आचार्यत्व में लक्षचण्डी, सहस्रचण्डी, शतचण्डी, मन्दिर-प्रतिष्ठादि अनेक यज्ञ करवाये। यही नहीं पं० पूर्णचन्द्र राज-ज्योतिषी के सहयोग से पेरिस, अफ्रीकादि विदेशों में भी आपने चण्डी-यज्ञ करवाये। बम्बई, कलकत्ता, उज्जैन, जगन्नाथपुरी, काशी, लाहौर, अमृतसर, सहारनपुर और हरिद्वारादि भारतीय नगरों में आपने यात्रा और धार्मिक भाषण दिये।

१९७७ विक्रम में आपने जगद्गुरु शंकराचार्य श्री भारतीकृष्णतीर्थ द्वारा विद्यासागर पदवी प्राप्त की। सन् १९६० में आपने विश्वविद्या प्रतिष्ठान, बम्बई से थीसिस पर महामहोपाध्याय पदवी प्राप्त की। सं० २०२१ में दिल्ली के तात्कालिक मुख्यमन्त्री श्री गुरुमुखनिहालसिंह द्वारा संस्कृत प्रचारक मण्डल की ओर से पांच हजार रुपयों की थैली भेंट में प्राप्त की। सं० २०२२ में आपने शंकराचार्य श्रीकृष्णबोधाश्रम, अनन्तश्री स्वामी करपात्री जी आदि महात्मा और म०म० गिरिधर शर्मा जयपुर, कविरत्न अखिलानन्द, माधवाचार्य शास्त्री दिल्ली, वेणीराम गौड़ वेदाचार्य, काशी, डा० सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी प्रयाग, डा० धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री, कुरुक्षेत्र, डा० डी. एन. शुक्ला, चण्डीगढ़ आदि विद्वानों द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट में प्राप्त किया। आपकी संस्कृत सेवा के उपलक्ष में भारत सरकार आपको डेढ़ सौ रुपये मासिक सम्मानित पेन्शन दे रही है। किं बहुना—"अधीतमध्यापितमर्जितं यशः" के आप असाधारण उदाहरण हैं। आपके सम्बन्ध में क्रमशः जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीकृष्ण-बोधाश्रम, अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी, म०म० गिरिधरशर्मा, कविरत्न अखिलानन्द और माधवाचार्य शास्त्री के पांच पद्य आपके अभिनन्दन ग्रन्थ से उद्धृत करता हूँ:—

नानावादिविचक्षणेभदलने शार्दूलविक्रीडितं
वाचस्पत्यमुपागतं पटुतरान्तेवाति शंकाङ्कने।

विद्यासागरतर्कमन्थनविधौलब्धोपपार्धि पटुं ।
छज्जूराममहोदयं   शतसमैरायुर्भिरायोजये ॥

निष्णातं विविधागमेषु बहुधा प्रस्थानभिन्नेषु तम्
न्यायव्याकरणादिशास्त्रनिवहे वाक्ये च पारंगतं ।
सप्तत्याभियुतं सभाजितमनल्पैः छज्जुरामं बुधम्
आशीराशिशतैर्हरिस्मृतियुतैः नन्दामि शंसन् मुहुः ॥

शास्त्रिणां छज्जुरामाणां चिरात्परिचितोऽस्म्यहम् ।
सर्वशास्त्रेषु   एतेषामबाधा   वर्तते   गतिः ॥

दार्शनिकीयत्प्रतिभा प्रतिभासंपन्न चेत्सां पुंसां ।
रमयति मानसमाराच्छज्जुरामः स विश्रुतः शास्त्री ॥

सन्ति क्षारजडाः ते ते पृथिव्यां सप्तसागराः ।
छज्जुरामः   कुरुक्षेत्रे   विद्यामाध्वीकसागरः ॥

धन्यं हर्यारण्यं यत्रत्याः छज्जुरामाद्याः ।
महामहोपाध्याया   विद्यासागरपदख्याताः ॥

विनम्र
जीवनराम शास्त्री, प्रभाकर, एम. लिट्.

विषय-सूची

*

॥ श्री ॥

शिवकथामृतमहाकाव्यम् हिन्दीटीकासहितम्

शिवपुरीकाशीवर्णनात्मकः

प्रथमः सर्गः

—०—०—

स जयति पाराशर्यः सत्यवतीनन्दनो व्यासः ।
यन्मुखनिःसृतवाणीः प्रमाणीकुर्वते विबुधाः ॥१॥

श्रीगणेशं नमस्कृत्य गुरूणां चरणाम्बुजम् ।
विधीयते प्रकाशेन टीकेयं राष्ट्रभाषया ॥

महर्षि पराशर और सत्यवती के पुत्र वेदव्यास जी की जय हो, जिनके मुख से निकली वाणी को विद्वद्जन प्रमाण रूप में मानते हैं ॥

शिवयोर्मातापित्रोरङ्के पङ्केन खेलन्तम् ।
अगजाजातं वन्दे तं देवं श्रीगजाननम् ॥ २ ॥

धूल से सने हुए अपने माता-पिता की गोद में खेलते हुए पार्वती-पुत्र श्री गजानन गणेश को मैं प्रणाम करता हूँ ॥

जीन्दपुर्यारविक्रोशे रिटोलीग्रामवासिना ।
महामहोपाध्यायेन छज्जुरामेण शास्त्रिणा ॥ ३ ॥
शिवं प्रणम्य सशिवं मातरं पितरं तथा ।
प्रणीयते महाकाव्यं भव्यं शिवकथामृतम् ॥ ४ ॥

जीन्द नगर से बारह कोस बूढाखेड़ा स्टेशन से तीन कोस पश्चिम की ओर बसने वाले पवित्र कुरुक्षेत्र भूम्यन्तर्गत रिटोली ग्राम के निवासी म० म० छज्जूराम शास्त्री विद्यासागर द्वारा मामकी मोक्षराम नामक माता-

पिता-रूपी पार्वती शिव को प्रणाम करके शिवकथामृत नामक महाकाव्य की रचना की जाती है ॥

भुव्यस्ति काशीनगरी स्वर्गतोऽपि गरीयसी ।
यत्रान्नपूर्णासहितः श्रीशिवः सुप्रतिष्ठितः ॥ ५ ॥

मर्त्यभूमि में स्वर्ग से भी सुन्दर काशी नामक नगरी है जहां अन्नपूर्णा (माता पार्वती) सहित भगवान् शिव सदा विराजमान रहते हैं ॥

यत्र स्वर्गस्तु किंवस्तु मोक्षः कायस्य मोक्षणात् ।
धन्यास्ति सा पुरी काशी धुरि सप्तपुरीषु या ॥ ६ ॥
पदे पदे मन्दिराणि पाठशालाः पदे पदे ।
पदे पदे च विद्वांसः काश्यामन्यत्रदुर्लभम् ॥ ७ ॥

यहां स्वर्ग की तो बात ही क्या शरीर छोड़ने मात्र से मोक्ष प्राप्त होता है वह काशी पुरी सातों पुरियों में अग्रणी है । जिस काशी पुरी में पद-पद पर मन्दिर, संस्कृत पाठशाला और विद्वान हैं । ये तीनों अन्यत्र दुर्लभ हैं ॥

परमेश्वररूपे द्वे निर्विकारं विकारयुक् ।
विकारयुक्तः सगुणः शिवः श्रुतिषु कीर्तितः ॥ ८ ॥

'द्वेवावब्रह्मणोरूपे मूर्तं चामूर्तं च' इस श्रुति के अनुसार परमात्मा के दो रूप हैं—सगुण मूर्त साकार और निर्गुण अमूर्त निराकार । सगुण अर्थात् साकार ब्रह्मरूप को श्रुतियों में शिव के रूप में वर्णित किया गया है ॥

स एव हि द्विजो जातः पुंस्त्रीरूपप्रभेदतः ।
यः पुमांस्तत्र स शिवः या स्त्री सा शक्तिरुच्यते ॥ ९ ॥

उन्हीं परमेश्वर के दो रूप हैं—एक पुरुषरूप और एक स्त्रीरूप । पुरुषरूप भगवान् शंकर हैं तथा स्त्री रूप को शक्ति कहा जाता है ।।

या शक्तिः पार्वती सा वै पुरुषस्तु शिवः स्मृतः ।
प्रकृतिः पुरुषश्चैतौ श्रुतिस्मृतिषु कीर्तितौ ।।१०।।

शक्तिरूप को पार्वती कहते हैं, पुरुषरूप को शिव कहा जाता है । श्रुतिस्मृतियों में इन्हीं को प्रकृति और पुरुष कहा गया है ।।

एकदा वाक् समुत्पन्ना निर्गुणात्परमात्मनः ।
द्वाभ्यां युवाभ्यां कर्त्तव्यं तपः सृष्टिसमीहया ।।११।।

एक बार यह आकाशवाणी हुई कि सृष्टि की कामना से तुम दोनों को तपस्या करनी चाहिए ।।

तयोश्च तेजसोःसारात् जाता वाराणसी पुरी ।
पंचक्रोशात्मिका सा वै सर्वोपकरणैर्युता ।।१२।।

उन दोनों के तेज से पांच कोस में फैली हुई समस्त साधनों से युक्त वाराणसी नगरी उत्पन्न हुई ।।

तामधिष्ठाय नगरीं विष्णुना प्रभविष्णुना ।
बहुवर्षं तपस्तप्तं शिवयोर्ध्यानशालिना ।।१३।।

उसी नगरी में भगवान् विष्णु ने शिव-पार्वती का ध्यान करते हुए अनेक वर्षों तक तप किया ।।

जलधाराःततोजाताः बह्वाकाराः समन्ततः ।
तादृष्ट्वा विष्णुना स्वस्य शिरसःकम्पनं कृतम् ।।१४।।

इसके पश्चात चारों तरफ़ अनेक आकारों की जलधाराएं उत्पन्न हो गईं। उन्हें देखकर भगवान् विष्णु ने अपने सिर को हिलाया ॥

ततश्च पतितः कर्णान्मणिः सा मणिकर्णिका ।
तज्जलोत्प्लाव्यमानाभूत्पंचक्रोशात्मिका पुरी ॥१५॥

जिस स्थान पर उनके कान की मणि गिरी वह मणिकर्णिका कहलाया। उस जल से पांच कोस में फैली हुई नगरी प्लावित हो गई ॥

सगुणेन शिवेनाशु त्रिशूलेन च सा धृता ।
विष्णुस्तत्रैव सुष्वाप स्वस्त्रिया रमया सह ॥१६॥

तब भगवान् शिव ने उसे अपने त्रिशूल पर धारण किया तथा विष्णु भगवान् लक्ष्मी के साथ वहीं सोते रहे ॥

तन्नाभिकमलाज्जातः शासनाच्छिवयोर्विधिः ।
तदोचतुर्ब्रह्मविष्णू स्वीयपत्न्या वृषध्वज ॥१७॥
काशीमेनामिदानीं स्वां राजधानीं कुरु प्रभो ।
तिष्ठ त्वमस्यां काश्यां वै मुक्तिभुक्तिप्रदोनृणाम् ॥१८॥

उनके नाभिकमल से शिव-पार्वती के निदेश से ब्रह्मा का जन्म हुआ। तब ब्रह्मा और विष्णु ने भगवान् शंकर से कहा कि हे प्रभो, आप पार्वती के साथ इस काशी नगरी में निवास करें और लोगों को मुक्ति प्रदान करें ॥

इत्येवं ब्रह्मविष्णुभ्यां द्वाभ्यां सम्प्रार्थितोऽकरोत् ।
तदारभ्य सदा काशीनिवासं शिवया शिवः ॥१९॥

इस प्रकार ब्रह्मा एवं विष्णु के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर

भगवान् शंकर ने पार्वती के साथ काशी में निवास करना स्वीकार कर लिया ॥

तत्कालादेव सा काशी वाराणस्यपराभिधा ।
पुरी श्रेष्ठतमा लोके मान्याभूत्सर्वमानवैः ॥२०॥

उसी समय से काशी जिसे वाराणसी भी कहते हैं, समस्त लोगों द्वारा सर्वश्रेष्ठ नगरी मानी जाती है ॥

पप्रच्छ चैकदा काश्या माहात्म्यं भगवत्युमा ।
उवाच तद्वचः श्रुत्वा शंकरो लोकशंकरः ॥२१॥

एक वार पार्वती ने भगवान् शंकर से काशी के माहात्म्य के विषय में पूछा । यह सुनकर लोक का कल्याण करने वाले भगवान् शंकर ने कहा ॥

अस्यां काश्यां मृतो यः स्यान्मुक्तो भवति पार्वति ।
रोचते मे ततः काशीनिवासी चात्र मानवः ॥२२॥

हे पार्वति, इस काशी नगरी में देहत्याग करने वाला व्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर लेता है । अतः यह नगरी एवं यहां निवास करने वाला व्यक्ति मुझे वहुत प्रिय हैं ॥

ज्ञानापेक्षा नचास्त्यत्र ध्यानापेक्षापि नो शिवे ।
काशीक्षेत्रे मृतो जन्तुर्मोक्षयुक्तो न संशयः ॥२३॥

इसके लिए न ज्ञान की आवश्यकता है न ध्यान की । काशी-क्षेत्र में देहत्याग करने मात्र से जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥

स्वेदजश्चाण्डजश्चैव उद्भिज्जश्च जरायुजः ।
अत्र क्षेत्रे मृतो जीवो नैव दुर्गतिमृच्छति ॥२४॥

इस क्षेत्र में देहत्याग करने वाले सभी प्रकार के जीव स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज अथवा जरायुज दुर्गति को प्राप्त नहीं होते हैं ॥

एतन्मम पुरं दिव्यं गुह्याद् गुह्यं प्रकीर्तितम् ।
ब्रह्मा विष्णुर्न जानीतः क्षेत्रस्यास्य च दिव्यताम् ॥२५॥

यह मेरी दिव्य और गुह्यतम पुरी है । इस क्षेत्र की दिव्यता को ब्रह्मा एवं विष्णु भी नहीं जानते हैं ॥

इदं क्षेत्रं मया प्रोक्तं ह्यविमुक्तं तथा श्रुतौ ।
सर्वेभ्यः पुष्करादिभ्यः परं मुक्तिप्रदं मृतौ ॥२६॥

इस क्षेत्र को मैंने अविमुक्त क्षेत्र कहा है। श्रुतियों में भी ऐसा ही कहा गया है। (जिस क्षेत्र में देहत्याग करने मात्र से मुक्ति हो उसे अविमुक्त क्षेत्र कहते हैं)। यह मरणोपरान्त पुष्करादि तीर्थों की भी अपेक्षा अधिक मुक्तिप्रद है ॥

धर्मस्योपनिषच्चेदं मोक्षस्योपनिषत्परम् ।
क्षेत्रतीर्थोपनिषदमविमुक्तं मतं बुधैः ॥२७॥

यह धर्म, मोक्ष एवं तीर्थों का सारत्तत्व है तथा विद्वानों ने इसे अविमुक्त क्षेत्र माना है ॥

कामं भुञ्जन् स्वपन् क्रीडन् कुर्वंश्च सकलाः क्रियाः ।
त्यक्त्वा प्राणानिह क्षेत्रे मोक्षभाङ् नात्र संशयः ॥२८॥

इच्छानुसार भोग, निद्रा एवं क्रीडा तथा सभी प्रकार की क्रियाओं

को करता हुआ भी इस क्षेत्र में प्राण त्याग करने वाला जीव निस्सन्देह मोक्ष का अधिकारी है ।।

कुरुक्षेत्रं प्रयागश्च काशीचैव श्रुतौ स्मृतौ ।
क्षेत्राणि चाविमुक्तानि कथितानि पराणि न ।।२९।।

कुरुक्षेत्र, प्रयाग तथा काशी को श्रुति स्मृति में अविमुक्त क्षेत्र कहा गया है । और कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है ।।

यत् यत् फलं समुद्दिश्य तपस्तपति चात्र ना ।
तत्तत् फलं ददाम्यत्र तस्मै पुंसे सदा शिवे ।।३०।।

जिस फल की कामना से मनुष्य यहां तप करता है, हे पार्वति; उसको वही फल मैं प्रदान करता हूँ ।।

सायुज्यमात्मनो देवि प्रयच्छाम्यन्ततस्ततः ।
नैव कोऽपि कर्मबन्धो भवेत्तद् बन्धकारणम् ।।३१।।

देवि, उस व्यक्ति को मैं अपना सायुज्य प्रदान करता हूँ । फिर कोई भी कर्म उसके बन्धन का कारण नहीं होता है ।।

विषयासक्तचित्तस्य क्रियाहीनस्य चापि वै ।
अस्मिन् क्षेत्रे मृतिं प्राप्य नाप्यन्ते लोकयातनाः ।।३२।।

विषयासक्त एवं कर्मपराङ्मुख जीव भी इस क्षेत्र में प्राण त्याग करने के बाद लोकयातना नहीं भोगता है ।।

पञ्चक्रोशं चतुर्दिक्षु क्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम् ।
यत्र कुत्र मृतिं लब्धवा मोक्षमाप्नोति मानवः ।।३३।।

चारो दिशाओं में पांच कोस तक यह क्षेत्र फैला हुआ है जहां प्राण-त्याग करने से मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है ॥

पापहीनो मृतो जन्तुः सद्यो मोक्षाय कल्पते ।
पापयुक्तश्च कालेन कायव्यूहान्समश्नुते ॥३४॥

निष्पाप जीव मृत्यु के पश्चात् तुरंत मोक्ष प्राप्त कर लेता है तथा पापयुक्त जीव समय-समय पर अनेक देहों को धारण करता है ॥

कृतस्य कर्मणो नाशो न भवेदन्यथा शिवे ।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥३५॥

हे पार्वति, किये हुए कर्म का नाश नहीं होता है । जो शुभ या अशुभ कर्म किये हैं उनका फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥

केवलं चाशुभं कर्म नरकस्य विधायकम् ।
शुभं च विहितं कर्म नूनं स्वर्गस्य दायकम् ॥३६॥

अशुभ कर्म मात्र से नरक मिलता है तथा शुभ कर्म से स्वर्ग प्राप्त होता है ॥

कर्म सम्यगसम्यक् च भाग्याद् भवति पार्वति ।
उभयोश्च क्षयो मोक्षः श्रुतिस्मृतिप्रदर्शितः ॥३७॥

हे पार्वति, उचित और अनुचित कर्म भाग्य से होते हैं। इस प्रकार दोनों कर्मों के क्षय को ही श्रुतिस्मृति में मोक्ष कहा गया है ॥

कर्म च त्रिविधं प्रोक्तमृषिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
संचितं क्रियमाणं च प्रारब्धं चेति भेदतः ॥३८॥

तत्वदर्शी ऋषियों ने तीन प्रकार के कर्मों—संचित, क्रियमाण तथा प्रारब्ध—का उल्लेख किया है ॥

पूर्वजन्मसमुद्भूतं संचितं कथ्यते बुधैः ।
वर्तमानेन कालेन प्रारब्धं भुज्यते नरैः ॥३९॥

पूर्वजन्म में किये गये कर्मों को विद्वान् संचित-कर्म कहते हैं। इस जन्म में मनुष्य अपने प्रारब्ध का ही भोग करता है ॥

अनेन जन्मना कर्म क्रियते यच्च साम्प्रतम् ।
शुभं चैवाशुभं देवि क्रियमाणं तदुच्यते ॥४०॥

इस जन्म में जो शुभ-अशुभ कर्म किये जा रहे हैं उन्हें क्रियमाण-कर्म कहा जाता है ॥

प्रारब्धकर्मणो भोगात् क्षयो भवति नान्यथा ।
उपायेन द्वयोर्नाशो मम ते पूजनादिना ॥४१॥

प्रारब्ध-कर्म का क्षय भोग के विना नहीं होता है। हम दोनों के पूजनादि उपाय के द्वारा अन्य दोनों प्रकार के कर्मों का नाश सम्भव है ॥

सर्वकर्मक्षयो नास्ति कुरुक्षेत्रादिकं विना ।
सुलभान्यन्यतीर्थानि दुर्लभा काशिका पुरी ॥४२॥

कुरुक्षेत्रादि के विना सब प्रकार के कर्मों का क्षय सम्भव नहीं है। अन्यान्य तीर्थ सुलभ हैं किन्तु काशी पुरी दुर्लभ है ॥

काश्यां गत्वा नरो यो वै मृत्युभाग् भवति प्रिये ।
तस्य वै क्रियमाणं च संचितं च विनश्यति ॥४३॥

जो व्यक्ति काशी में देहत्याग करता है उसके क्रियमाण व संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं ॥

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च काश्यां चाहं सदाशिवे ।
प्राणिनां म्रियमाणानां प्रददे तारकं मनुम् ॥४४॥

हे पार्वति, कुरुक्षेत्र, प्रयाग तथा काशी में देहत्याग करने वालों को मैं तारक-मंत्र का उपदेश करता हूँ ॥

ब्रह्मज्ञानं ततो जन्तोर्म्रियमाणस्य जायते ।
ऋते ज्ञानान्न मुक्तिर्वै सिद्धान्तः सर्वसम्मतः ॥४५॥

इससे मरणासन्न जीव को ब्रह्मज्ञान हो जाता है। तथा ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है—यह सर्वमान्य सिद्धान्त है ॥

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च काश्यां चैव हि यो मृतः ।
तारकस्य प्रभावेण पुनर्जन्म न जायते ॥४६॥

कुरुक्षेत्र, प्रयाग तथा काशी में प्राण त्याग करने वाले जीव का मुमूर्षुता दशा में तारक-मंत्र के प्रभाव से पुनर्जन्म नहीं होता है ॥

असारे संसारे निखिलनिगमानां च कृतिनाम्,
मतान्येतानीह त्रिविधपरितापस्य शमने ।
सदा काश्यां वासः सततसहवासश्च विदुषां,
सदा गंगास्नानं सुतनु तव पूजा च मम च ॥४७॥

समस्त वेदों का तथा विद्वानों का यह मत है कि इस अपार संसार में त्रिविध दुःखों के शमन के लिए सदा काशीवास, विद्वानों का साहचर्य, गंगास्नान तथा तुम्हारी और मेरी उपासना ही एक उपाय है ॥

गतोऽयं प्रथमः सर्गो निसर्गोदात्तगीर्युतः ।
चतुर्दशप्रवन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ॥४८॥

चौदह ग्रन्थों के भ्राता इस काव्य का प्रकृत्या उदात्त वाणी से युक्त प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
काशीमहत्त्ववर्णनात्मकः
प्रथमः सर्गः ॥

शिवस्यद्वादशज्योतिर्लिङ्गवर्णनात्मकः

द्वितीयः सर्गः

—०—०—

विश्वनाथो यथा लिङ्गं वाराणस्यां प्रतिष्ठितम् ।
तथैकादशलिङ्गानि नामतः श्रृणु पार्वति ॥ १ ॥

वाराणसी में जैसे विश्वनाथ जी का लिङ्ग प्रतिष्ठित है, हे पार्वति, वैसे ही ग्यारह लिङ्गों के नाम सुनो ॥

ज्योतिर्लिङ्गं द्वितीयं तु मल्लिकार्जुनसंभवम् ।
आस्ते तत्पर्वते क्रौञ्चनामके षण्मुखाश्रिते ॥ २ ॥

दूसरा मल्लिकार्जुन से उत्पन्न ज्योतिर्लिङ्ग क्रौञ्च नामक पर्वत पर है जहाँ कार्तिकेय निवास करते हैं ॥

अमावस्यादिने चाहं तत्र गच्छामि सर्वदा ।
पौर्णमासीदिने त्वं च तत्र गच्छसि हे प्रिये ॥ ३ ॥

मैं सदा अमावस्या को वहाँ जाता हूँ और तुम पूर्णमासी को वहाँ जाती हो ॥

पुत्रस्नेहातुरावावां गच्छावः तत्र नित्यशः ।
महामायाप्रभावेण साहि सर्वस्य मोहिनी ॥ ४ ॥

महामाया के प्रभाव से और पुत्र-स्नेह के कारण हम दोनों वहाँ जाते हैं क्योंकि महामाया का प्रभाव सभी को मोहित करने वाला है ॥

यः समीक्षेत तल्लिङ्गं सर्वसौख्यकरं भुवि ।
जननीगर्भसम्भूतकष्टादपि स मुच्यते ॥ ५ ॥

जो व्यक्ति सभी प्रकार के सुख को देने वाले उस लिङ्ग का दर्शन कर लेता है वह पुनर्जन्म के कष्ट से मुक्त हो जाता है ॥

रत्नमालनगाधीशः एको वै दूषणासुरः ।
उज्जयिन्यां समागत्य ब्राह्मणान् हतवान् बहून् ॥ ६ ॥

रत्नमाल नामक पर्वत का स्वामी दूषणासुर था। उसने उज्जयिनी में आकर अनेक ब्राह्मणों की हत्या की ॥

यावन्मम ध्यानपरान् ब्राह्मणान् हन्तुमुद्यतः ।
अभूवं गर्ततः तावत् एकस्मात्क्रूरदर्शनः ॥ ७ ॥

जिस समय वह मेरा ध्यान करने वाले ब्राह्मणों को मारने के लिये उद्यत हुआ, उसी समय मैं विकराल रूप धारण करके एक गर्त से प्रकट हो गया ॥

महाकाल इति ख्यातः तस्य कालोऽभवं ततः ।
तत्सैन्यं चापि मां दृष्ट्वा पलायितमितस्ततः ॥ ८ ॥

उसके मरण का कारण मैं महाकाल नाम से विख्यात हुआ। उसके सैनिक भी मुझे देखकर इधर-उधर भाग गये ॥

ब्राह्मणैः प्रार्थितः सोऽहं तत्र स्थितिमकल्पयम् ।
मां दृष्ट्वा काममाप्नोति मानवो मोक्षभाक् तथा ॥ ९ ॥

ब्राह्मणों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर मैं वहीं वास करता हूँ। मुझे देखकर लोगों की कामना पूरी होती है तथा वे मोक्ष के भागी होते हैं ॥

चतुः चत्वारिंशदग्रे द्विसहस्रतमाब्दके ।
कलेर्याते महावीरो मम पूर्णाकृपान्वितः ॥१०॥
शूद्रको विक्रमादित्यो ह्यग्निमित्रापराह्वयः ।
वत्सरं स्वं शकान् जित्वा चालयिष्यति विक्रमम् ॥११॥

कलियुग के २०४४ वर्ष बीत जाने पर मेरी कृपा से युक्त परम वीर शूद्रक विक्रमादित्य जिसे शुङ्ग अग्निमित्र भी कहते हैं, शकों को जीतकर अपना विक्रम नामक संवत्सर चलायेगा ॥

विन्ध्याचले समाख्यातमोंकारेश्वरलिङ्गकम् ।
विन्ध्याचलतपस्तुष्टः स्थितिं तत्र करोम्यहम् ॥१२॥

विन्ध्याचल में ओंकारेश्वर नामक लिङ्ग है जहाँ मैं विन्ध्याचल की तपस्या से सन्तुष्ट होकर निवास करता हूँ ॥

ममपूजां सुराश्चक्रुः तदारभ्य नराश्च वै ।
प्रापुर्वरान् मनोभीष्टानोंकारकृपयान्विताः ॥१३॥

तब से देवता और मनुष्यों ने मेरी पूजा की और ओंकारेश्वर की कृपा से अपने अभीष्ट वरों को प्राप्त किया ॥

नरनारायणौ देवौ तपतः स्म यतस्तपः ।
उत्तरे भारते वर्षे बदर्याश्रमसंज्ञके ॥१४॥
ताभ्यां सम्प्रार्थितश्चाहं ज्योतिरूपे ततः स्थितः ।
पाण्डवाभीष्टवरदः केदारेश्वरसंज्ञकः ॥१५॥

उत्तर भारत में स्थित बदरिकाश्रम में नरनारायण ने जहाँ तप किया था वहाँ उनके कहने से मैं पाण्डवों को अभीष्ट वर देने वाला केदारनाथ नाम से विख्यात ज्योतिरूप में स्थित हूँ ॥

कामरूपेश्वरं हन्तुं मम भक्तं यदाऽसुरः ।
चिक्षेप भीमः स्वं खड्गं मम लिङ्गे पपात सः ॥१६॥

भीमासुर ने मेरे भक्त कामरूपेश्वर को मारने के लिए जब अपना

खड्ग फेंका तो वह मेरे लिङ्ग के ऊपर आकर गिरा ॥

तस्मादाविर्बभूवाथोऽयोध्यायां भीमशंकरः ।
भीमं हत्वा प्रार्थितोऽहं तत्र स्थितिमकल्पयम् ॥१७॥

इससे अयोध्या में भीमशंकर का जन्म हुआ तथा भीम को मारने के पश्चात् प्रार्थना किये जाने पर मैं वहीं निवास करता हूँ ॥

गौतमेन महत्तप्त्वा तपः सन्तोषितेन मे ।
गंगया च तदा प्रोक्तं वरं वरय हे मुने ॥१८॥

गौतम ऋषि के उग्र तप से सन्तुष्ट मैंने तथा गंगा ने मुनि से वर माँगने को कहा। (ते मे शब्दौ निपातेसुमयेत्यर्थः) ॥

गौतमः प्राह भो देव मया त्र्यम्बकनामतः ।
पूजनं तव लिङ्गस्य कृतं बहुविधानतः ॥१९॥
त्र्यम्बकेश्वर नाम्ना त्वं तिष्ठात्रैव सरिद्वरे ।
गौतमीति त्वया नाम्ना स्थीयतां मम सद्मनि ॥२०॥

गौतम मुनि ने कहा—हे देव, मैंने आपके लिङ्ग का त्र्यम्बक नाम से विधानपूर्वक पूजन किया है अतः आप त्र्यम्बकेश्वर नाम से यहीं पर निवास करो तथा नदियों में श्रेष्ठ तुम गौतमी नाम से मेरे घर रहो ॥

तद्दिनं हि समारभ्य त्र्यम्बकेश्वरनामतः ।
स्थितं मयाथ गौतम्यख्याया श्रीगंगया तथा ॥२१॥

तब से मैं त्र्यम्बकेश्वर नाम से तथा गंगा गौतमी नाम से वहीं निवास करते हैं ॥

वैद्यनाथेश्वरं लिङ्गं रावणोऽस्थापयन्मम ।
तत्पार्श्वे कृतवान् घोरं तपः स तपतां वरः ॥२२॥

रावण ने मेरे वैद्यनाथेश्वर लिङ्ग की स्थापना की और उसके समीप उसने घोर तप किया ॥

ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षायां स्थण्डिलेशयः ।
शीतकाले जलान्तःस्थः त्रिविधं स तपोऽतपत् ॥२३॥

ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि के बीच तथा वर्षा में स्थण्डिलशायी होकर तथा शीत ऋतु में जल में रहकर उसने त्रिविध तपस्या की ॥

प्रसन्नोऽहं तमाहस्म वरं वरय रावण ।
स चाह मत्तपः स्थाने तिष्ठ मुक्तिप्रदो नृणाम् ॥२४॥

प्रसन्न होकर मैंने रावण से वर माँगने को कहा । उसने मानवों को मुक्तिदाता के रूप में यहाँ निवास करने के लिए कहा ॥

मया छिन्नानि शीर्षाणि वैद्यवत्त्वमयोजयः ।
वैद्यनाथेति नाम्ना त्वं प्रसिद्धो भव भूतले ॥२५॥

मैंने अपने मस्तकों को काटा और आपने वैद्यवत् कार्य किया, अतः पृथ्वी मे आप वैद्यनाथ नाम से विख्यात होंगे ॥

मद्भक्तस्यैकवैश्यस्य नागनाम्नोर्चनात् शिवे ।
आविर्बभूव मल्लिङ्गं नागेश्वरमिति स्मृतम् ॥२६॥

हे पार्वति, मेरे एक वैश्य भक्त द्वारा नाग नाम से पूजन किये जाने पर मेरे एक लिङ्ग का प्रादुर्भाव हुआ जिसे नागेश्वर कहते हैं ॥

पूजनादस्य लिङ्गस्य वीरसेनस्य भूपतेः ।
दारुकाकानने जाता सर्वसम्पत् महेश्वरि ॥२७॥

इस लिङ्ग की पूजा करने से वीरसेन नामक राजा सब प्रकार की सम्पत्तियों से युक्त हो गया ॥

रामेश्वरस्य लिङ्गस्य माहात्म्यं शृणु पार्वति ।
त्रेतायां भगवान्विष्णुर्जातो दशरथात्मजः ॥२८॥

हे पार्वती, रामेश्वर लिङ्ग का महत्त्व मैं तुम्हें बताता हूँ, वह सुनो। त्रेता युग में भगवान् विष्णु ने दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म लिया ॥

तस्य सीता हृता पत्नी रावणेन दुरात्मना ।
लंकायां स्थापिता रामः प्रजिघाय ततः कपीन् ॥२९॥

दुरात्मा रावण ने उनकी पत्नी सीता का अपहरण कर लिया और लंका ले गया। तब भगवान् राम ने लंका में सीता को ढूंढ़ने के लिये वानरों को भेजा ॥

हनूमतश्च तां ज्ञात्वा जीवन्तीं जनकात्मजाम् ।
तदानयनकृत्यार्थं लिङ्गं संस्थाप्य मे उमे ॥३०॥
अर्चयामास बहुधा स मां विधि विधानतः ।
ततः प्रसन्नहृदयो जयो भवतु तेऽब्रुवम् ॥३१॥
रामप्रार्थनया तत्र लिङ्गरूपोऽभवं तदा ।
रामेश्वरेतिनाम्ना वै प्रसिद्धो भूतलेऽखिले ॥३२॥

हनूमान से यह जानकर कि सीता अभी जीवित है अतः उसको वापिस लाने के उद्देश्य से उन्होंने मेरे लिङ्ग की स्थापना करके विधि विधान से पूजन किया। 'तुम्हारी विजय हो' ऐसा मैंने कहा तथा उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर लिङ्गरूप होकर रामेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥

घुश्मेश्वर इतिख्यातं ममलिङ्गं महेश्वरि ।
घुश्मानाम्न्यभवच्चैका नारी स्त्रीपुशिरोमणि ॥३३॥

हे महेश्वरि, मेरा एक लिङ्ग घुश्मेश्वर है जो नारी-शिरोमणि घुश्मा नामक नारी के नाम से प्रसिद्ध है ॥

पार्थिवानि च लिङ्गानि साऽनर्च प्रत्यहं मम ।
तत्प्रभावान्मृतं पुत्रं जीवयामास सा स्वकम् ॥३४॥

उसने नित्य ही मेरे पार्थिव लिङ्गों का पूजन किया और इसके प्रभाव से अपने मृत पुत्र को जीवित कर लिया था ॥

साचाह वरदानाय स्थिताय मह्यमीश्वरि ।
घुश्मेश्वर इतिख्यातं लिङ्गं मे जायतां प्रभो ॥३५॥

उसने मुझसे वर मांगा कि हे प्रभो, आप घुश्मेश्वर नाम से विख्यात होकर लिङ्गरूप में यहां विराजमान होवें ॥

तथेतिचोक्त्वाहमुमे स्वभक्तां
घुश्माख्यदेवी मभवत्तुलिङ्गम् ।
घुश्मेश्वरेतिप्रथितं पृथिव्याम्
इमानि लिङ्गानि निबोधय त्वम् ॥३६॥

हे उमे, अपनी भक्त घुश्मा देवी को मैं तथास्तु कहकर लिङ्गरूप बन गया। इन लिङ्गों को भी तुम जानो ॥

सौराष्ट्रदेशे मम सोमनाथलिङ्गं,
समभ्यर्चितमिन्दुना यत् ।
रोगस्य शोकस्य विनाशकारकं,
भोगस्य मोक्षस्य च दायकं वै ॥३७॥

सौराष्ट्र देश में मेरा सोमनाथ नामक लिङ्ग है जो चन्द्रमा से पूजित है। वह रोग और शोक का विनाशक और भोग तथा अन्त में मोक्ष-दायक है ॥

द्वितीयोऽयं गतः सर्गः शंसनीयो निजैर्गुणैः ।
चतुर्दशप्रबन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ॥३८॥

इस काव्य में यह द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ, जो चौदह ग्रन्थों का भ्राता है ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये शिवस्य
द्वादशज्योतिर्लिङ्गवर्णनात्मकः
द्वितीयः सर्गः ॥

शिवपत्नीसतीवर्णनात्मकः

तृतीयः सर्गः

—०—०—

ब्रह्माज्ञप्तः सुताहेतोः क्षीरोदस्योत्तरेतटे ।
ब्रह्मपुत्रः तपः तप्तुं समारेभे स दक्षकः ॥ १ ॥

ब्रह्मपुत्र दक्ष ने ब्रह्मा जी की आज्ञा से पुत्री की कामना से क्षीरसागर के उत्तरी तट पर तप करना आरम्भ किया ॥

पवनाशी जलाहारी बहुभिर्नियमैर्यमैः ।
किंचित्कालेन प्रत्यक्षोचक्रे स जगदम्बिकाम् ॥ २ ॥

कभी पवन का और कभी जल का सेवन करते हुए तथा अनेक प्रकार के यम नियमों का पालन करते हुए उन्होंने कुछ समय बाद ही जगदम्बिका के दर्शन किये ॥

तुष्टाव वचनैर्दिव्यैरेभिस्तां स जगत्स्तुताम् ।
नमस्तेऽस्तु महामाये ब्रह्माद्यैरपि संस्तुते ॥ ३ ॥
एवं स्तुता जगन्माता दक्षेण प्रयतात्मना ।
आह भो दक्ष तुष्टाहं वरं वरय सुव्रत ॥ ४ ॥

इस प्रकार दक्ष द्वारा स्तुति किए जाने पर जगन्माता ने कहा, हे सुव्रत, मैं तुम्हारे से प्रसन्न हूँ अतः तुम कोई वर मांग लो ॥

ऊचे दक्षो जगत्स्वामी संजातः मत्पितुःसुतः ।
रुद्रनामा समस्तांशावतारः परमात्मनः ॥ ५ ॥

दक्ष ने कहा कि मेरे पिता का रुद्र नामक एक पुत्र है जोकि परमात्मा का समस्त अंश का अवतार है ॥

त्वां विना तस्य मोहाय नो शक्नोति पराङ्गना ।
ततो ममात्मजा भूत्वा रुद्रजाया भवाधुना ॥६॥

आपके सिवाय कोई अन्य स्त्री उसको मोहित करने में समर्थ नहीं है अतः आप मेरी पुत्री बनकर उसकी पत्नी बनें ॥

दक्षस्य वचनं श्रुत्वा हसित्वाऽवोचदम्बिका ।
करिष्ये वचनं नूनं दक्ष तेऽहं प्रजापते ॥७॥

दक्ष के ये वचन सुनकर अम्बिका ने हंस कर कहा, हे प्रजापति, मैं अवश्य ऐसा ही करूँगी ॥

तवात्मजा भविष्यामि करिष्यामि महत्तपः ।
येनाहं शिवभार्यास्यां तस्यार्धाङ्गस्य भागिनी ॥८॥

मैं तुम्हारी पुत्री बनूंगी और महान् तप करूँगी जिससे मैं शिवजी की पत्नी बनकर उनके अर्धाङ्ग की भागी बन सकूं ॥

अहं तस्य प्रियाभार्या दक्ष जन्मनि जन्मनि ।
मम प्रभुः स वै शम्भुः गच्छ तात यथासुखम् ॥९॥

हे दक्ष, मैं जन्म-जनमान्तर की उनकी प्रिय भार्या हूं। वे मेरे प्रभु हैं। अब तुम सुखपूर्वक घर जाओ ॥

यदा मन्दादरः त्वं वै भविष्यसि च मां प्रति ।
देहं त्यक्ष्यामि तत्काले मनाक् सोढास्मि नाऽप्रियम् ॥१०॥

जब तुम मेरे प्रति मन्दादर हो जाओगे तो मैं उसी समय देहत्याग कर दूंगी क्योंकि मैं तनिक भी अप्रिय सहन नहीं करूँगी ॥

इत्युक्त्वा सा महेशानी दक्षं प्रति प्रजापतिम् ।
अन्तर्दधेऽतिशीघ्रं वै दक्षस्य परिपश्यतः ॥११॥

दक्ष से ऐसा कहकर जगदम्बा उनके देखते-देखते अन्तर्हित हो गई ॥

अन्तर्हितायां दुर्गायां ययौ गेहं प्रजापतिः ।
भविष्यति सुता मेऽसौ सर्वसौभाग्यदायिनी ॥१२॥

दुर्गा के अन्तर्हित हो जाने पर प्रजापति इस विचार से अपने घर गये कि अब समस्त सौभाग्य को देने वाली देवी मेरी पुत्री के रूप में जन्म लेगी ॥

पुनः सोऽथ स्वकीयायां स्त्रियां सृष्टिमना मनाक् ।
दिव्याः प्रजनयामास षष्टिसंख्यान्विताः सुता ॥१३॥

तब उन्होंने सृष्टि-कामना से अपनी स्त्री द्वारा साठ पुत्रियों को उत्पन्न किया ॥

धर्माय दश तास्वेष कश्यपाय त्रयोदश ।
ददौ त्रिणव सोमाय ताक्ष्यार्थं चान्यकन्यकाः ॥१४॥

उन्होंने दस कन्याओं का धर्मराज के साथ, तेरह का कश्यप के साथ, सत्ताईस का चन्द्रमा के साथ और अवशिष्ट का तार्क्ष्य के साथ विवाह किया ॥

एकदा मुनयः सर्वे सुरा नारायणादयः ।
ज्ञात्वा गर्भगतां देवीं वीरिण्या अस्तुवन्मुदा ॥१५॥

एक बार मुनियों ने तथा नारायणादि देवताओं ने वीरिणी को गर्भवती जानकर गर्भस्थ देवी की बड़े हर्ष से स्तुति की ॥

गतेषु नवमासेषु दशमे मासि सा शिवा ।
आविर्बभूव वीरिण्या गर्भादतिशुभानना ॥१६॥

नौ मास पूरे हो जाने पर दसवें मास में शुभानना दुर्गा ने वीरिणी के गर्भ से जन्म लिया ॥

अभूदद्भुतपुष्पाणां वृष्टिः ववृषुरम्बुदाः ।
दिशः प्रसेदुः सकलाः प्रसन्नमभवन्नभः ॥१७॥

उसका जन्म होने पर अद्‌भुत पुष्पों की वृष्टि हुई तथा मेघों ने भी वर्षा की। समस्त दिशाएं तथा आकाश स्वच्छ हो गये ॥

वीरिणीगर्भसंभूतां दक्षस्तां जगदम्बिकाम् ।
तुष्टाव वाग्भिः चित्राभिः भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ॥१८॥

दक्ष ने वीरिणी के गर्भ से उत्पन्न भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली जगदम्बिका की विभिन्न प्रकार से स्तुति की ॥

स्तुता तदा जगन्माता सती दक्षेण धीमता ।
शैशवंभावमाश्रित्य रुरोद च मुमोद च ॥१९॥

दक्ष द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर जगन्माता सती शिशु की भाँति रोने और हँसने लगी ॥

वीरिणी तां सुतां प्रेम्णा स्तन्यपानादिकं ददौ ।
पालिता बहुयत्नेन ववृधे सा पितुर्गृहे ॥२०॥

वीरिणी ने अपनी पुत्री को प्रेम से स्तन्यपानादि कराया और इस प्रकार यत्नपूर्वक पालन किये जाने से वह अपने पिता के घर में बड़ी होने लगी ॥

गायन्ती रम्यगीतानि सती बाल्योचितानि सा ।
रुद्रं हरं शिवं स्थाणुं सस्मार स्मरशासनम् ।।२१।।

बालोचित गीतों को गाती हुई वह शिवजी के रुद्र आदि नामों का स्मरण करने लगी ।।

इत्थं विहारैः कौमारैः रुचिरैर्जगदम्बिका ।
बाल्यं विहाय स्ववयः किंचिद् यौवनतां ययौ ।।२२।।

इस प्रकार मोहक बालोचित क्रीड़ाओं को करती हुई जगदम्बिका ने अपनी बाल्यावस्था को छोड़कर यौवन में कुछ-कुछ प्रवेश किया ।।

शिवार्चनरता नित्यं बभूव वरवर्णिनी ।
वीरिणी च तथाभूतां सुतां दृष्ट्वा मुमोद ह ।।२३।।

सती सदैव शिवार्चन में लीन रहने लगी। अपनी पुत्री की इस स्थिति को देखकर वीरिणी अति प्रसन्न हुई ।।

पित्रोराज्ञामनुप्राप्य मासेषु द्वादशस्वपि ।
वृन्दाव्रतं कृतवती सती शिववरेच्छया ।।२४।।

पिता की आज्ञा प्राप्त करके उसने शिव को पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा से नन्दा नामक व्रत किया ।।

तस्मिन्नवसरे शम्भु पञ्चवक्त्रः त्रिलोचनः ।
सर्वाङ्गसुन्दरः श्रीमान् कोटिचन्द्रनिभाननः ।।२५।।
तस्यश्च ध्यानमग्नायाः प्रत्यक्षीभूय चाब्रवीत् ।
दक्षनन्दिनि प्रीतोऽस्मि व्रतेनानेन तेऽनघे ।।२६।।

तब ध्यानमग्न सती के समक्ष पांच मुखों एवं तीन नेत्रों से युक्त तथा कोटि चन्द्रों के समान सुन्दर शिवजी ने प्रकट होकर कहा—हे दक्ष-पुत्रि, मैं तुम्हारे इस व्रत से प्रसन्न हूं ॥

वरं वरय सुश्रोणि यस्ते मनसि वर्तते ।
तच्छ्रुत्वा दक्षजा प्राह सेवार्थं स्वीकुरुष्व माम् ॥२७॥

जो तुम्हारे मन में कामना है, वह तुम मुझसे मांग लो । यह सुन कर उसने कहा कि आप अपनी सेवा के लिये मुझे स्त्रीरूप में स्वीकार करें ॥

तथास्त्वितिवचः प्रोच्य हिमप्रस्थमगाच्छिवः ।
शिवापि च शिवाज्ञप्ता पितुर्निलयमागमत् ॥२८॥

'तथास्तु' कहकर शिवजी हिमालय में चले गये तथा वह भी उनकी आज्ञा से पिता के घर चली गई ॥

मात्रे पित्रे च सा सर्वं सखीभ्यश्च न्यवेदयत् ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय मात्रादिः प्रशशंस निजात्मजाम् ॥२९॥

उसने अपने माता-पिता तथा सखियों को सब कुछ बताया । तब माता आदि ने उसकी प्रशंसा की और मस्तक सूंघा ॥

दक्षेणाभ्यर्थितो वेधा अगमद्धाम शूलिनः ।
चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां तद्गृहे तं स आनयत् ॥३०॥

दक्ष के प्रार्थना करने पर ब्रह्मा शिवजी के स्थान पर गये और चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को वे शिवजी को दक्ष के घर ले आये ॥

शिवेनसहिता सर्वे श्रीहरिर्वासवादयः ।
निमंत्रिता समायाता ब्रह्मपुत्रपुरे वरे ॥३१॥

शिव सहित भगवान् विष्णु एवं इन्द्रादि निमंत्रित किये जाने पर दक्ष की पुरी में आ गये ॥

दक्षस्तु गीतवाद्यैस्तं ससुतः स्वसुहृदवृतः ।
सर्वं सहानयामास स्वगृहाभ्यन्तरे शिवम् ॥३२॥

अपने पुत्र एवं सुहृज्जनों के साथ दक्ष शिव को तथा अन्यान्य देवों को वाजे-गाजे के साथ अपने घर ले आये ॥

पुनश्च स प्रसन्नात्मा परमात्मानमीश्वरम् ।
सम्यगानर्च सामग्रया विष्णुं ब्रह्माणमेव च ॥३३॥

इसके पश्चात् उन्होंने (दक्ष ने) भगवान् शिव, विष्णु एवं ब्रह्मा की विधिवत् पूजा की ॥

सर्वानृषीन् तथा सर्वान् गणान् शम्भोर्ममरुद्गणान् ।
पूजयित्वा विधानेन पितरं चेदमब्रवीत् ॥३४॥

समस्त ऋषियों, शिवगणों तथा मरुदगणों की विधिपूर्वक पूजा करने के उपरान्त उन्होंने (दक्ष ने) अपने पिता से यह कहा ॥

वैवाहिकमिदं कार्यं त्वया कार्यं विधेर्विधे ।
ओमित्युक्त्वा स तु तयोः पाणिग्रहमकारयत् ॥३५॥

हे विधे, शिवा का विवाह संस्कार आप विधिपूर्वक करायें । इस प्रार्थना को स्वीकार करके उन्होंने (ब्रह्मा ने) शिव एवं सती का पाणि-ग्रहण संस्कार विधिपूर्वक कराया ॥

सुतादानस्य पश्चात् स दक्षः प्रेम्णा महद ददौ ।
यौतुकं विविधं शम्भोःकृते विप्रकृते धनम् ॥३६॥

कन्यादान के पश्चात् दक्ष ने प्रेम से शिव के लिये बहुत अधिक दहेज तथा ब्राह्मणों को धन दिया ॥

ब्रह्मविष्णवादिकान् देवान् सत्कृत्य भोजनादिभिः ।
निवर्तयामास गृहात्तथैव शिवया शिवम् ॥३७॥

ब्रह्माविष्णु आदि देवताओं को भोजन आदि से सत्कार करके उन्होंने उनको तथा शिवा के साथ शिव को अपने घर से विदा किया ॥

समागत्य समं पत्न्या कैलासे भगवान् शिवः ।
चिक्रीड बहुकालं स दक्षजाकृष्टमानसः ॥३८॥

अपनी पत्नी के साथ कैलास पर आकर दोनों ने बहुत समय तक क्रीड़ा की ॥

सती बहुविधै दिव्यै विहारैः शशिमौलिना ।
सह तुष्टाऽभवत् तस्या निवृत्तं रागतो मनः ॥३९॥

शिव के साथ अनेक प्रकार का विहार करके अत्यन्त सन्तुष्ट सती का मन राग से विमुख हो गया ॥

एकदा भूत्प्रयागस्य कुम्भे सम्मेलनं महत् ।
समवेताः सुरगणाः सर्वे मुनिगणास्तथा ॥४०॥

एक बार प्रयाग में कुम्भ के अवसर पर बृहत् सम्मेलन हुआ जिसमें देवता तथा ऋषिगण सम्मिलित हुए ॥

शिवोऽपि च सपत्नीकः सगण आगतस्ततः ।
दक्षः प्रजापतिश्चापि यदृच्छातः समागतः ॥४१॥

वहां पत्नी एवं गणों के साथ शिवजी भी गये तथा दक्ष प्रजापति भी स्वेच्छा से वहां गये ॥

नेमुस्तं सकला देवा वासवाद्यास्तथर्षयः ।
नो ननाम शिवो ह्येव तेन रुष्टोऽभवत् स वै ॥४२॥

इन्द्रादि सभी देवताओं ने तथा ऋषियों ने दक्ष को प्रणाम किया। केवल शिव ने उन्हें प्रणाम नहीं किया। इससे दक्ष क्रुद्ध हो गये ॥

शिवं तं क्रूरयादृष्ट्या पश्यतिस्म सचाधमः ।
उवाच देवान् रुद्रोयं भ्रष्टाचारोऽस्ति सर्वथा ॥४३॥

दक्ष ने कठोर दृष्टि से शिव को देखा तथा देवताओं एवं ऋषियों से कहा कि यह रुद्र सर्वथा भ्रष्टाचार है ॥

यज्ञादिके शुभे कार्ये वहिष्कार्यः स सत्वरम् ।
श्मशानवासी भस्मांगः लोकाचारविवर्जितः ॥४४॥

इस रुद्र को यज्ञादि शुभ कार्यों में से हटा देना चाहिये क्योंकि यह श्मशान में रहने वाला भस्म का लेप करने वाला एवं लोकाचार से हीन है ॥

तच्छ्रुत्वाह तदा नन्दी दुष्टदक्ष किमुच्यते ।
यज्ञादिकं न सफलं शिवस्य स्मरणाद् ऋते ॥४५॥

यह सुनकर नन्दी ने कहा—अरे दुष्ट दक्ष, यह तुम क्या कह रहे हो। शिव के स्मरण के बिना यज्ञादि कार्य सफल नहीं होते हैं ॥

त्रिपुण्ड्रं यस्य नो भाले गले रुद्राक्षधारणम् ।
नास्ये शिवमयीवाणी तं त्यजेत् यज्ञकर्मणि ॥४६॥

जिसके मस्तक पर त्रिपुण्ड्र, गले में रुद्राक्ष की माला एवं मुख में शिव नाम न हो उसको यज्ञकर्म में शामिल नहीं करना चाहिये ॥

संस्नाप्य प्रत्यहं यस्तु शंकरं नर्मदेश्वरम् ।
त्रिःपिबेत् त्रिविधं पापं तस्य नश्यति तत्क्षणात् ॥४७॥

जो व्यक्ति नित्यंप्रति नर्मदेश्वर को स्नान करा कर उस जल को तीन वार पीता है, उसके त्रिविध पाप तुरन्त ही नष्ट हो जाते हैं ॥

यं स्तुवन्त्यखिला वेदाः सुरासुरमुनीश्वराः ।
तं शिवं गर्हितं ब्रूषे मत्तस्त्वं मृत्युमीहसे ॥४८॥

जिनकी समस्त वेद, सुर-ग्रसुर एवं मुनिगण स्तुति करते हैं, तुम उनकी निन्दा कर रहे हो, ग्रतः प्रतीत होता है कि तुम मेरे द्वारा मृत्यु की कामना करते हो ॥

निषिध्य नन्दिनं देवः शिवः स्वस्थानमागतः ।
ययुः स्वस्थानमन्येऽपि दक्षं संभर्त्स्य रोषतः ॥४९॥

नन्दी को ऐसा कहने का निषेध करके शिव ग्रपने स्थान को चले ग्राये तथा वहुत ग्रन्य लोग भी रोषपूर्वक दक्ष की भर्त्सना करते हुए ग्रपने-ग्रपने स्थान को चले गये ॥

यज्ञं विश्वजितं चक्रे दक्षः सर्वस्वदक्षिणम् ।
तत्राहूतो मुनिगणः सर्वो देवगणस्तथा ॥५०॥

एक बार दक्ष ने गर्व से विश्वजित् यज्ञ का ग्रायोजन किया जिसमें उसने सभी देवताग्रों एवं मुनियों को निमंत्रित किया ॥

तस्मिन् यज्ञे वर्तमाने स्थाने कनखलाभिधे ।
ऋत्विजश्च कृतास्तेन विष्णवादिकमहर्षयः ॥५१॥

कनखल में हो रहे उस यज्ञ में भृगु ग्रादि ऋषियों को ऋत्विज बनाया ॥

यज्ञाध्यक्षः कृतो विष्णु नाहूतो भगवान् शिवः ।
ब्रह्मा च विहितो ब्रह्मा दिक्पाला द्वारपालकाः ॥५२॥

यज्ञ में विष्णु को अध्यक्ष, ब्रह्मा को ब्रह्मा तथा दिक्पालों को द्वार-पाल बनाया गया किन्तु शिव को आमन्त्रित नहीं किया गया ॥

तदा दधीचिरूचे तं विफलः स्यादयं मखः ।
अत्रागतो न भगवान् शिवया सहितः शिवः ॥५३॥

तब दधीचि ने कहा कि यह यज्ञ सफल नहीं होगा क्योंकि इसमें पत्नी सहित भगवान् शिव सम्मिलित नहीं हुए हैं ॥

सत्यागत्याशु चाहस्म स्मरारिं भो प्रभो शृणु ।
पितुर्मम महायज्ञो भवत्यद्य मया श्रुतम् ॥५४॥

सती ने भगवान् शिव से कहा कि मैंने सुना है कि आज मेरे पिता के यहां यज्ञ हो रहा है ॥

शिव ऊचे स मे द्रोही न गन्तव्यं त्वया मया ।
परालयं न गच्छन्ति अनाहूता जनाः प्रिये ॥५५॥

शिव ने कहा कि हे प्रिये, वह मेरा द्रोही है, अतः तुम्हें एवं मुझे वहां नहीं जाना चाहिए । विना बुलाये दूसरे के घर नहीं जाया करते हैं ॥

नाङ्गीकृत्य शिवाज्ञप्तं सतीय माता पितुर्मखे ।
तिरस्कृता च पित्रो साऽजुहोदग्नौ स्विकां तनुम् ॥५६॥

शिव के मना करने पर भी सती दक्ष के यज्ञ में चली गई और पिता द्वारा तिरस्कार किये जाने पर उसने अपने शरीर को अग्नि में होम दिया ॥

एवं सति महान् कोलाहलो जातः समन्ततः ।
नारदः शिवमागत्य सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥५७॥

ऐसा होने पर चारों ओर बहुत कोलाहल होने लगा। नारद ने यह सब वृत्तान्त आकर शिवजी को सुनाया ॥

विष्णुमाह स दक्षस्तु रक्ष मां रुद्रजाद् भयात् ।
विष्णुराह न शक्तोऽस्मि रुद्रप्रद्वेषिरक्षणे ॥५८॥

दक्ष ने विष्णु से कहा कि आप मेरी रुद्र से उत्पन्न हुए भय से रक्षा करो। उन्होंने कहा कि रुद्र से द्वेष करने वाले की रक्षा करने में मैं असमर्थ हूँ ॥

शिवः स्वशिरसः केशात् वीरभद्रमजीजनत् ।
यश्च दक्षमखे गत्वा मखध्वंसमचीकरत् ॥५९॥

शिव ने अपने सिर से एक केश उखाड़ कर वीरभद्र को उत्पन्न किया जिसने दक्ष के यज्ञ में जाकर उस यज्ञ का ध्वंस कर दिया ॥

पराजिते देवगणे वीरद्वारा हरावपि ।
हाहाकारो भवद्यज्ञे बहुलाश्च पलायिता ॥६०॥

दक्ष के देखते-देखते वीरभद्र द्वारा सभी देवगणों और विष्णु के पराजित हो जाने पर यज्ञ में सम्मिलित लोगों में हाहाकार मच गया और कुछ लोग यज्ञ से भाग गये ॥

दक्षस्य शिर उत्कृत्य यज्ञाग्नावजुहोत् क्षणात् ।
भृग्वादीनां स वै श्मश्रून् पाटयामास रोषतः ॥६१॥

वीरभद्र ने दक्ष के सिर को काट कर अग्नि में डाल दिया तथा भृगु आदि ऋषियों की डाढ़ी को उखाड़ दिया ॥

ब्रह्मविष्णुस्तुतः शम्भुरजस्यायोज्य वक्त्रकम् ।
वंबंशब्दं प्रकुर्वाणान् दक्षप्राणान् समानयत् ॥६२॥

ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा स्तुति किये जाने पर शिव ने बकरे का मुख लगा कर 'वं वं' शब्द का उच्चारण करने वाले दक्ष को जीवित कर दिया ॥

अयि चन्दचूड करुणाकर अभ्यंकर भो,
प्रणतपाल जगदीश्वर शंकर सतीप्रभो ।
बहुलैर्दुःखैर्दुःखितं ननु मामतीव हीनतमम्,
विभवैर्विहीनमथ उद्धर हर दीनतमम् ॥६३॥

हे सती प्रभो, करुणाकर शंकर ! अनेक दुखों से दुखित और हीनतम तथा विभवों से विहीन मेरा उद्धार करो ॥

सकलासकलाभिज्ञः मतिमानतिमानयुक् ।
शशिखण्डशिखण्डस्य योजनः कृतवान् स्तवान् ॥६४॥

वह कलाओं का पूर्ण ज्ञाता है, वह बुद्धिमान तथा अतिमान्य है जो शशिखण्डधर हर की स्तुति करता है ॥

इतोदक्षस्तुत्या मखमपि च पूर्णं विहितवान्
प्रसन्नःसन् शंभुर्विविधवरदानं च कृतवान् ।
क्षमां लब्ध्वा दक्षेण च वहुप्रकारैरभिनुतः
शिवः सर्वैर्देवै निजनिजगृहानाप मखतः ॥६५॥

इस उपर्युक्त दक्ष की स्तुति से प्रसन्न होकर शंभु ने उसका यज्ञ पूर्ण करवा दिया, उसके लिये अनेक वर दिये और दक्ष ने भी क्षमा मांगकर शिव की पूर्ण स्तुति की। तब शिव और सब देव अपने-अपने स्थानों में चले गये ॥

गतः सर्गः तृतीयोऽयं शंसनीयो निजैर्गुणैः ।
चतुर्दशप्रबन्धानां भ्रातुः चैतस्यकाव्यस्य ॥६६॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
सतीविवाहादिवर्णनात्मकः
तृतीयः सर्गः ॥

शिवपत्नीपार्वतीवर्णनात्मकः

चतुर्थः सर्गः

—०—०—

पितुर्यज्ञेऽथ दक्षस्य त्यक्त्वा देहं सती पुनः ।
सुताहिमगिरेः जाता मेनायामितिशुश्रुमः ॥ १ ॥

अपने पिता दक्ष के यज्ञ में देहत्याग करने के पश्चात् सती ने हिमालय और मेनका की पुत्री के रूप में जन्म लिया ॥

यदा दाक्षायणी चक्रे शिवेन सहिता मुदा ।
अनेकलीलाः तत्पार्श्वे मेने मेनेदृशं सदा ॥ २ ॥

जिस समय दक्ष की पुत्री ने शिव के साथ हिमालय में अनेक प्रकार की क्रीड़ायें कीं, उस समय मेनका की यह इच्छा हुई कि—॥

मत्सुतापीदृशी भूयात् शिवस्यानुग्रहात् यदि ।
महद्व्रतं चरिष्यामि भविष्यामीदृशीसुता ॥ ३ ॥

यदि शिव की कृपा से मैं भी ऐसी पुत्री वाली हो जाऊँ तो शिव के अनेक व्रत करूंगी ॥

गते बहुतिथे काले सतीं स्मृत्वाथ मेनका ।
गङ्गायामौषधिप्रस्थे चक्रे बहुदिनं व्रतम् ॥ ४ ॥

बहुत समय बीत जाने पर सती का स्मरण करके हिमालय की पत्नी मेना ने गंगा के औषधिप्रस्थ नामक स्थान पर बहुत दिनों तक व्रत किया ॥

सप्तविंशे दिने देवी साविर्भूय तदग्रतः ।
वरं ब्रूहीति तामाह सतीरूपा महेश्वरी ॥ ५ ॥

सत्ताइसवें दिन सतीरूपा भगवती मेना के आगे प्रकट होकर वोली—हे मेने, मैं प्रसन्न हूँ, तुम अभीष्ट वर मांगो ॥

मेनकोवाच भो देवि शतं पुत्रा भवन्तु मे ।
पश्चात्सुता त्वं भवतात् देवानां कार्यसिद्धये ॥ ६ ॥

मेनका ने कहा—हे देवि, पहले मेरे सौ पुत्र हों, पीछे देव-कार्य की सिद्धि के लिए तुम मेरी पुत्री होवो ॥

देव्युवाच शतं पुत्रा भविष्यन्ति पुरा तव ।
सुता तव भविष्यामि ततोन्तर्धानमाप सा ॥ ७ ॥

हे माता, पहले तुम्हारे सौ पुत्र होंगे, पीछे मैं तुम्हारी पुत्री बनूंगी —यह कहकर देवी अन्तर्हित हो गई ॥

मेनका च वरं प्राप्य स्वपत्ये प्रशशंस तम् ।
महोत्सवस्तदा चासीन्नगरे स्ववरे महान् ॥ ८ ॥

देवी से वर मांगने का सब वृत्तान्त मेनका ने अपने पति को सुना दिया और नगर में महान् उत्सव का आयोजन किया ॥

प्रसूय सा शतं पुत्रान्महाबलपराक्रमान् ।
असूत जठरात्स्वस्मात् देवीं श्रीमिव सागरात् ॥ ९ ॥

अति पराक्रमी सौ पुत्रों को जन्म देने के पश्चात् मेना ने कोख से देवी को उसी प्रकार जन्म दिया जैसे सागर ने लक्ष्मी को जन्म दिया था ॥

मेनोवाच महादेवि करुणावरुणालये ।
त्वां लब्ध्वा सफलं जातं दम्पत्योर्जन्मचावयोः ॥१०॥

मेना ने कहा कि हे करुणामयि महादेवि, आपको पाकर हम दोनों का जन्म सफल हो गया ॥

कुलोचितेन नाम्ना तामाजुहाव च पार्वतीम् ।
बन्धुप्रियां बन्धुजनः जनकश्चातिप्रीतिमान् ॥११॥

पर्वतकुल में उत्पन्न होने के कारण उसको बन्धुजन और माता-पिता पार्वती नाम से पुकारने लगे ॥

एकदा नारदं प्राप्तं गिरीन्द्रः पृष्टवान्मुनिम् ।
कस्य भार्या सुतेयं मे भविष्यति मुने वद ॥१२॥

एक बार आये हुए नारद (ऋषि) से हिमाचल ने पूछा कि हे मुने, मेरी पुत्री किसकी भार्या बनेगी—यह आप मुझे बताएं ॥

पार्वत्या जातकं दृष्ट्वा मुनिराह हिमाचलम् ।
सौम्य चास्याः वरः शम्भुर्लीलारूपधरः प्रभुः ॥१३॥

पार्वती के जातक को देखकर नारद ने हिमालय से कहा कि इसके पति भगवान् शिव होगें ॥

तपसा वचसा चेयं तोषयिष्यति शंकरम् ।
विद्युद्गौरतमत्वाच्च गौरीति ख्यातिमेष्यति ॥१४॥

यह कन्या तप और अपनी दिव्य वाणी से भगवान् शंकर को सन्तुष्ट करेगी और बिजली के समान गौरवर्ण होने के कारण गौरी नाम से प्रख्यात होगी ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा हसित्वाह गिरीश्वरः ।
श्रूयते स हि निस्संगस्तपस्तपति नित्यशः ॥१५॥

नारद के वचन सुनकर हंसते हुए हिमाचल ने कहा कि सुना जाता है कि वह शिव असंगभाव से सदैव तप में लीन रहते हैं ॥

किंच सत्या समं तेन प्रतिज्ञेयं कृता श्रुता ।
भार्यार्थं न ग्रहीष्यामि त्वां विनाऽन्यां सति प्रिये ॥१६॥

और फिर मैंने सुना है कि शिव ने सती से यह प्रतिज्ञा की है कि "तुम्हारे से अतिरिक्त मैं किसी अन्य स्त्री से विवाह नहीं करूंगा" ॥

अथ तस्यां मृतायां स कथमन्यां ग्रहीष्यति ।
इति मे संशयो भूरि तेन दोलायते मनः ॥१७॥

सती की मृत्यु के पश्चात् वह कैसे किसी से विवाह करेंगे इसमें मुझे महान् संशय है ॥

गिरीन्द्रमाह स मुनिर्नैतां चिन्तां कुरुष्व भोः ।
एषा तवात्मजा नूनं दक्षजैवाभवत्पुरा ॥१८॥

नारद ने कहा कि ऐसी चिन्ता तुम मत करो। तुम्हारी यह पुत्री पहले दक्ष की ही पुत्री सती रूप में थी ॥

पितुर्यज्ञेऽवमानं सा लब्ध्वा त्यक्त्वा स्विकां तनुम् ।
सैवेयं त्वद्गृहे जाता त्वद्भार्यार्थनया॰ पुनः ॥१९॥

पिता के यज्ञ में तिरस्कृत किये जाने पर और शरीर त्याग करने के पश्चात्, वही तुम्हारे घर में तुम्हारी धर्मपत्नी द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उत्पन्न हुई है ॥

तत्सर्वं पूर्ववृत्तान्तं श्रुत्वा मुनिमुखाद् गिरिः ।
परं प्रसन्नः संजातः सहितः पुत्रदारकैः ।।२०।।

मुनि के मुख से समस्त पूर्ववृत्तान्त सुनकर हिमालय अपने पुत्रादि सहित अति प्रसन्न हुए ।।

उक्त्वा गते मुनिवरे मेनोवाचैकदा पतिम् ।
विवाहं कुरुतादस्याः सुन्दरेण वरेण भोः ।।२१।।

नारद जी के ऐसा कहकर चले जाने के पश्चात् मेना ने अपने पति से कहा कि किसी सुन्दर वर के साथ इसका विवाह कर दो ।।

शृणु त्वं मेनके मेदो वाक्यं ह्यवितथं प्रिये ।
यदुक्तं नारदेनाद्य मुनिना सर्वदर्शिना ।।२२।।

हे प्रिये, मेरे सत्य वाक्य को सुनो । जो सर्वज्ञ सर्वदर्शी नारद मुनि ने कहा है वही होगा, अन्य नहीं ।।

प्रेम चेत्तव पार्वत्यां तां निबोधय प्रेमतः ।
तपः कुर्यान्महेशस्य सा प्रेम्णा स्थिरचेतसा ।।२३।।

हे देवि, अपनी पुत्री पार्वती से यदि तुम्हें प्रेम है तो उससे कहो कि वह प्रेम और स्थिर चित्त से शंकर की आराधना करे ।।

श्रुत्वा हिमाचलवचः प्रेम्णा मेनाऽह पार्वतीम् ।
प्रिये पुत्रि त्वमाराध्य शंकरम् स्ववरं कुरु ।।२४।।

यह सुनकर मेना ने प्रेमपूर्वक पार्वती से कहा कि हे पुत्रि, तुम आराधना करके शंकर को अपना पति बनाओ ।।

पार्वत्युवाच भो मातः स्वप्ने दृष्टो मया शिवः ।
आदिदेश तपस्तप्तुं कृपया मां कृपानिधिः ।।२५।।

पार्वती ने कहा कि हे माता, मुझे भी भगवान् शंकर ने स्वप्न में तप करने का आदेश दिया है।।

एतस्मिन्नेव समये तपस्तप्तुं महेश्वरः ।
हिमालये समायातः सतीविरहकातरः ।।२६।।

इसी बीच सती के विरह से व्याकुल होकर भगवान् शिव हिमालय में तप करने के लिये आये ।।

शिवागमनमाकर्ण्य लोकेभ्यः स हिमाचलः ।
समादाय जगामाशु पार्वतीं शिवसन्निधौ ।।२७।।

लोगों से शिव को हिमालय में आया जानकर हिमालय शीघ्र ही पार्वती को लेकर उनके पास गये ।।

स प्राह सफलं जन्म कर्मचाद्य मम प्रभो ।
यदत्र त्वं समायातः तपसे श्रेयसे च मे ।।२८।।

हिमाचल ने कहा कि आप जो तप करने के लिये और फलतः मेरे कल्याण के लिये आये हैं, इससे मेरा जन्म एवं कर्म सफल हो गया ।।

भगवन्नात्मजा मेऽसौ सेवितुं त्वां महेश्वरम् ।
समुत्सुका समानीता समेता स्वसखीजनैः ।।२९।।

हे भगवन्, यह मेरी पुत्री है और आप की सेवा करने के लिये उत्सुक है । अतः सखियों के साथ मैं इसको यहाँ लाया हूँ ।।

शंकरस्तामपश्यद् वै प्रथमारूढयौवनाम् ।
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥३०॥

तब शंकर ने पार्वती की ओर देखा जिसने यौवन में अभी प्रवेश किया ही था और जिसकी ग्रीवा कम्बु के समान थी, नेत्र बड़े-बड़े थे और मुख चन्द्रमा के समान था ॥

गिरिराह त्वया ग्राह्या ह्येषाचेन्मय्यनुग्रहः ।
शिवः प्राह त्वमागच्छ नित्यमेव न ते सुता ॥३१॥

हिमालय ने कहा कि यदि आपकी मेरे पर कृपा है तो आप इसको स्वीकार कर लीजिये । शिव ने कहा कि तुम प्रतिदिन यहाँ आया करो किन्तु अपनी पुत्री को मत लाया करो ॥

अहं योगी तपस्वी च किंकार्यमनया स्त्रिया ।
मायारूपा स्मृता नारी युवती तु विशेषतः ॥३२॥

मैं योगी और तपस्वी हूँ । मुझे स्त्री से क्या काम । और फिर नारी, विशेषकर युवती, को माया का रूप कहा गया है ॥

एतच्छ्रुत्वा चण्डिकाह तपःशक्त्यान्वितो भवान् ।
तपः कर्तुं समर्थोऽस्ति नान्यथा त्वं विचारय ॥३३॥

यह सुनकर चण्डिका ने कहा कि आप तप की शक्ति से युक्त हैं, तभी तपस्या करने में समर्थ हैं । अतः आपको ऐसा विचार नहीं करना चाहिये ॥

सा शक्तिः प्रकृतिर्ज्ञेया तया सर्वं विरच्यते ।
वचनं रचनं सर्वं प्रकृतेः कार्यमुच्यते ॥३४॥

वह शक्ति प्रकृति कहलाती है । उसी से सबकी रचना होती है

क्योंकि 'प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः । अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते' ॥

प्रकृत्या गिलितोऽसि त्वं न जानासि निजं शिव ।
किं बहूक्तेन वादेन मद्वचोह्यवधारय ॥३५॥

प्रकृति के वश में होकर आप अपने स्वरूप को नहीं जानते हैं । अधिक कहने से क्या लाभ है । जो मैं कहती हूँ उसे समझें ॥

सा चाहं प्रकृतिस्त्वं वै पुरुषो नात्रसंशयः ।
मत् ऋते त्वं निरीहोऽसि न किंचित्कर्तुमर्हसि ॥३६॥

वह प्रकृति मैं हूँ और आप निस्सन्देह पुरुष हैं । मेरे विना आप कुछ भी करने में असमर्थ हैं ॥

शिवः प्राह यदि ब्रूषे सांख्यसिद्धान्तमावयोः ।
तपस्तथापि कर्त्तव्यमावाभ्यामिति निर्णयः ॥३७॥

शिव ने कहा कि यदि तुम सांख्यमत का कथन कर रही हो तव भी मुझे और तुझे तप तो करना ही चाहिये—ऐसा मेरा निर्णय है ॥

पितुराज्ञामनुप्राप्य हिमाचलसुता तपः ।
कर्तुं सखीभ्यां सहिता जगाम गहनं वनम् ॥३८॥

पिता की आज्ञा प्राप्त करके पार्वती सखियों के साथ वन में तप करने चली गई ॥

तपस्तताप सा तत्र गंगावतरणं यतः ।
गौरीशिखरनामा भूत्सच यत्रतपोऽतपत् ॥३९॥

जिस स्थान से गंगा निकलती है, पार्वती ने वहाँ तप किया और उस स्थान का नाम गौरी शिखर हो गया ॥

प्रथमे फलभोक्त्र्यासीत् पर्णभोक्त्री द्वितीयके ।
तृतीये मासि सा चासीदपर्णानाम विश्रुता ॥४०॥

प्रथम मास में पार्वती ने केवल फलों का आहार किया, द्वितीय में केवल पत्तों का और तीसरे मास में उसने पत्तों का भी त्याग कर दिया अतएव अपर्णा नाम से विख्यात हुई ॥

तपश्चचार सा यत्र निष्फलाः सफलाः द्रुमाः ।
निष्पुष्पाश्च सपुष्पा हि जाता स्तत्तपसोवलात् ॥४१॥

जिस स्थान पर पार्वती ने तप किया था वहाँ फल रहित वृक्ष फलयुक्त हो गये तथा पुष्पहीन वृक्ष पुष्पयुक्त हो गये। यह पार्वती के तप का प्रभाव हुआ ॥

गतेषु त्रिषु मासेसु तपस्यन्तीं घने वने ।
शिवो दृष्ट्वागजामाह कासिकस्यासि सुव्रते ॥४२॥

घोर वन में तपस्या करते हुए तीन मास बीत जाने पर शिव ने पार्वती से (परीक्षा लेने के लिये) पूछा कि तुम कौन हो, किसकी पुत्री हो, इस गहन वन में तपस्या करने का क्या कारण है ॥

कतमो मुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरादिगषु ।
पुण्येन जनुषा वंशः स्वकीयेन विभूषितः ॥४३॥

अपने शुभ जन्म से तुमने किस मुनिगन्धर्वादि के कुल को विभूषित किया है ॥

नवे वयसि किंचातितीव्रवैराग्यकारणम् ।
गहने विपिने येन तपश्चरसि दुश्चरम् ।।४४।।

क्या कारण है जो इतनी अल्प अवस्था में वैराग्य हो गया है जिससे तुम इस गहन वन में कठोर तप कर रही हो ।।

इति पृष्टाऽगजा तेन प्रैरिरत् विजयासखीम् ।
सा चाह शृणु भो विप्र गिरिराजसुताह्यसौ ।।५।४

इस प्रकार पूछे जाने पर पार्वती ने अपनी सखी विजया को उत्तर देने के लिये कहा । उसने कहा कि हे विप्र, यह हिमालय की पुत्री है ।।

ख्याता च पार्वतीनाम्ना वरं चेच्छति शंकरम् ।
तस्याः सत्योक्तिमाकर्ण्य शिवरूपोऽभवत् द्विजः ।।४६।।

इसका नाम पार्वती है तथा शंकर को पति रूप में प्राप्त करने की इसकी इच्छा है । उसके इस सत्य कथन को सुन कर शंकर ने द्विज रूप को त्याग दिया ।।

पार्वतीमाह भो देवि प्रसन्नोऽस्मि शिवोऽस्मि च ।
वरं वरय सुश्रोणि यस्ते मनसि वर्तते ।।४७।।

उन्होंने पार्वती से कहा कि मैं शिव हूँ और तुम्हारे से प्रसन्न हूँ अतः तुम्हारे मन में जो भी इच्छा हो माँग लो ।।

तुष्टोऽसि यदि मे देव सेवार्थं स्वीकुरुष्व माम् ।
याचस्व मां पितुर्गत्वा कृपां कृत्वा ममोपरि ।।४८।।

पार्वती ने कहा कि यदि आप प्रसन्न हो तो मुझे अपनी सेविका बना लो । हे भगवन्, आप कृपा करके मेरे पिता के पास जाकर मुझे माँग लो ।।

दक्षात्मजा पुराह्यासं पित्रा दत्तापि ते कृते ।
विवाहविधिना सम्यक् विवाहो न कृतस्तव ।।४९।।

मैं पहले दक्ष की पुत्री थी और मेरे पिता ने मुझे आपको प्रदान भी किया था किन्तु सम्यक् रीति से विवाह नहीं किया था ।।

न ग्रहाः पूजिता स्तेन मम तातेन च त्वया ।
विवाह विधिनेदानीं मामङ्गीकुरु भोः प्रभो ।।५०।।

न तो मेरे पिता ने, न आपने, ग्रहों की पूजा की । अतः इस बार आप मुझे विधिपूर्वक स्वीकार करें ।।

तथास्त्विति वचः प्रोच्य जगाम स्वालयं शिवः ।
शिवापि च पितुर्गेहं गत्वा सर्वं न्यवेदयत् ।।५१।।

'तथास्तु' कह कर शिव अपने स्थान को चले गये तथा पार्वती ने भी अपने घर जाकर सब वृत्तान्त सुनाया ।।

ब्रह्माज्ञप्तो गिरिः प्रोत्याऽलेखयत् लग्नपत्रिकाम् ।
कैलासे तज्जना गत्वा सुप्रीतास्तामदाच्छिवम् ।।५२।।

ब्रह्मा के आदेश से हिमालय ने प्रेम से लग्न-पत्रिका लिखाई और कैलास में जाकर उनके व्यक्तियों ने वह शिव को दे दी ।।

अथ शम्भुर्गृहीत्वा तां युक्तां मङ्गलपत्रिकाम् ।
विष्णुप्रभृतिदेवांश्च मुनींश्चापि न्यमन्त्रयत् ।।५३।।

उस मंगल-पत्रिका को स्वीकार करके शिव ने विष्णु आदि देवों तथा मुनियों को निमंत्रित किया ।।

अथ विष्ण्वादिसंयुक्तो मुदितः स्वगणैर्वृतः ।
आजगाम यथाकालं शिवो हिमगिरेः पुरे ॥५४॥

विष्णु आदि देवों तथा अपने गणों के साथ शिव यथासमय हिमालय की नगरी में आ गये ॥

विष्ण्वादिप्रार्थनाच्छम्भुर्नानाभूषणभूषितम् ।
दिव्यं चकार स्वं रूपं मूर्ध्नि चन्द्रेणशोभितम् ॥५५॥

विष्णु आदि के कहने से शिव ने अपना रूप दिव्य बनाकर शरीर पर आभूषणों को तथा मस्तक पर चन्द्रमा को धारण किया ॥

बन्धुस्त्रियश्च पार्वत्याः चक्रुरङ्गप्रसाधनम् ।
मेनार्द्राया हरिद्रायाः तिलकं मूर्ध्न्यचीकरत् ॥५६॥

भाईयों की स्त्रियों ने पार्वती को भूषण पहनाए और माता ने मस्तक पर गीली हल्दी का टीका लगाया ॥

कुलदेवीसतीभ्यश्च प्रणिपत्य गिरीन्द्रजा ।
वृद्धस्त्रीणामाशिषश्च गृहीत्वा मण्डपं ययौ ॥५७॥

अपनी कुलदेवी और सतियों को प्रणाम करके और वृद्ध स्त्रियों का आशीर्वाद लेकर पार्वती विवाह-मण्डप में गई ॥

प्रावेशयन्निजगृहे विवाहार्थं शिवं गिरिः ।
पाद्यमर्घ्यं मधुपर्कं वस्त्रे तस्मै च दत्तवान् ॥५८॥

गिरिराज ने विवाह-मण्डप में शिव को लाकर पाद्यार्घमधुपर्क और वस्त्रद्वय दिये ॥

युवत्यश्च कुमार्यश्च पार्वतीमङ्गलं जगुः ।
हृष्टाः पुष्टाश्च सन्तुष्टाः प्रविष्टाः सद्मनोङ्गणे ॥५९॥

सब युवतियों और कुमारियों ने पार्वती-मङ्गल-गान किया । वे सब हृष्टपुष्ट और खानपान से सन्तुष्ट होकर गृहाङ्गण में बैठी थीं ॥

अग्निप्रदक्षिणां तौ द्वौ लाजाहोमं तथैव च ।
ग्रन्थिबन्धं सप्तपदीं कृत्वा न्यविशतां गृहे ॥६०॥

दोनों ने अग्नि प्रदक्षिणा, लाजाहोम, ग्रन्थिबन्धन और सप्तपदी करके अन्तःपुर में प्रवेश किया ॥

युवतीप्रार्थनातस्तौ द्वावेकासनमास्थितौ ।
लेभाते परमां शोभां मुमुदाते परस्परम् ॥६१॥

अन्तःपुर में तरुणी स्त्रियों ने दोनों को आसन पर बिठाया । तब अति प्रसन्न पार्वती-परमेश्वर की शोभा अनुपम थी ॥

तथाविधौ प्रसन्नाभूत् दृष्ट्वा मेना सुतावरौ ।
अभवत् दानसामग्र्यां सज्जिता भर्तृसंयुता ॥६२॥

अपनी कन्या और वर को इस रूप में देख कर मेना अति प्रसन्न हुई तथा पति सहित अपनी कन्या की दान-सामग्री में लग गई ॥

यथाविधि गिरिर्दत्वा सपत्नीको निजात्मजाम् ।
शिवाय परमेशाय यौतुकं चाप्य दान्महत् ॥६३॥

इस प्रकार शिव को विधिपूर्वक कन्यादान करने के बाद हिमाचल ने बहुत अधिक दहेज भी दिया ॥

गृहान्तःसंप्रविष्टं तं दृष्ट्वा देवं पुराङ्गनाः ।
प्रसशंसुः स्वभाग्यानि पित्रोर्भाग्यानि चैव हि ॥६४॥

घर में आये हुए शिव को देखकर पुराङ्गनाओं ने अपने भाग्य की तथा हिमाचल के भाग्य की सराहना की ॥

हिमाचलगृहे भुक्त्वा नानान्नानि समे सुराः ।
स्वस्वस्थानं प्रमुदिताः ययुः तृप्तिमुपागताः ॥६५॥

हिमाचल के घर में नाना प्रकार के भोजनों से तृप्त और हर्षित होकर सभी देवता अपने-अपने स्थान को गये ॥

ननाम सा पर्वतराजपुत्री प्रेम्णा स्वकीयौ पितरौ सखीश्च ।
भ्रातृंश्च सर्वान् रुदती मुहुर्वै लोकस्य दृष्ट्या च प्रयाणकाले॥६६॥

पार्वती ने विदा होते समय लोकदृष्टि से बार-बार रोते हुए प्रेम-पूर्वक अपने माता-पिता को, सखियों को, सभी भाइयों को प्रणाम किया ॥

प्रस्थानकाले स्वगृहादुमायाः,
सखीजनो बन्धुजनश्च सर्वः ।
पिता च माता स्म रुदन्ति दाराः,
जरापरीता अपि किं युवत्यः ॥६७॥

अपने घर से विदा होते समय पार्वती ने समस्त सखीजन, बन्धुजन, माता-पिता तथा वृद्धा स्त्रियों को भी रुला दिया—युवतियों का तो कहना ही क्या ॥

मेनोवाच प्रियेपुत्रि पत्युराज्ञाकरी भव ।
विशृंखला नदीव स्त्री कुलं कूलमिवोद्विजेत् ॥६८॥

मेना बोली—हे प्रिय पुत्री, तुम यहां से जाकर पति की आज्ञा पर चलना क्योंकि मर्यादारहित नदी जैसे तट को उखाड़ देती है, इसी प्रकार मर्यादारहित स्त्री अपने कुल को नष्ट कर देती है ॥

उभाभ्यां रत्नमाले द्वे सुवर्णस्याङ्गुलीयके ।
विमानं यानमेकं च दत्त्वा तौ स व्यसर्जयत् ॥६९॥

हिमाचल ने पार्वती-शिव को दो रत्नमाला, दो अँगूठी, एक विमान देकर विदा किया ॥

चतुर्थोऽयं गतः सर्गोऽवितर्थोऽनुत्तमैर्गुणैः ।
चतुर्दशप्रबन्धानां भ्रातुश्चैतस्य काव्यस्य ॥७०॥

चतुर्दश प्रबन्धों के भ्राता इस काव्य में उत्तम गुणों से युक्त चौथा सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
पार्वतीविवाहवर्णनात्मकः
चतुर्थः सर्गः ॥

अथ शिवपुत्रस्कन्दवर्णनात्मकः
पञ्चमः सर्गः

—०—०—

अथ प्रभुर्महादेवो विवाह्य जगदम्बिकाम् ।
कैलासे निर्जनं स्थानं संसारस्य विमोहनम् ॥ १ ॥

पार्वती के साथ विवाह करने के पश्चात् शिव ऐसे निर्जन स्थान में चले गये जोकि संसार को मोहने वाला था ॥

शय्यां तत्रादभुतां कृत्वा सर्ववस्त्वंचितां शिवः ।
तया स उमया रेमे बहुःकालं रहःस्थितः ॥ २ ॥

वहाँ सब वस्तुओं से सम्पन्न शय्या की रचना करके शिव ने बहुत समय तक उमा के साथ रमण किया ॥

पतङ्गे वारिधौ लीने भृङ्गे कमलिनीवने ।
अनङ्गे युवतीमध्ये अर्धाङ्गेन शिवोऽरमत् ॥ ३ ॥

सूर्य के समुद्र में डूब जाने पर, भृङ्ग के कमल वन में और कामदेव के युवतियों के मन में लीन होने पर, अर्थात् रात्रि में, शिव ने शिवा से प्रेम किया । (कारण—दिन में प्रेम करना शास्त्रों के विरुद्ध है) ॥

अनङ्गः शिवमालिङ्गत् सचालिङ्गच्छिवां प्रियाम् ।
परस्परालिङ्गनात्तौ महानन्दमविन्दताम् ॥ ४ ॥

कामदेव ने भगवान् शिव के मन में आलिङ्गन किया, शिव ने अपनी प्रियतमा शिवा का आलिङ्गन किया । परस्पर आलिङ्गन करने से दोनों

को महान् ग्रानन्द हुग्रा ॥

रत्यानन्दोद्वयोर्यूनोः ब्रह्मानन्दात् विशिष्यते ।
सुख्येको ब्रह्मवित् किन्तु सुखिनौ कामिनावुभौ ॥ ५ ॥

दम्पती को प्राप्त होने वाला रति का सुख ब्रह्मानन्द से भी ग्रधिक होता है। ब्रह्मानन्द का सुख ब्रह्मज्ञानी को ही होता है जबकि रति का ग्रानन्द युवा ग्रौर युवती दोनों ग्रनुभव करते हैं ॥

कैलासं संपरित्यज्य यत्रतत्र कदाचन ।
मलये देवनिलये पुष्पोद्याने तपोवने ॥ ६ ॥
कन्दरेसिन्धुतीरे च नन्दने गन्धमादने ।
कामुक्या शिवया साकं कामुकः शिव ग्रारमत् ॥ ७ ॥
न च तृप्तः शिवारेत्या न च तृप्ता शिवापिसा ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव तथापितौ गृहं गतौ ॥ ८ ॥

कैलास छोड़कर दोनों ने कभी मलयाचल में, कभी स्वर्ग में, कभी पुष्पोद्यान में, कभी कन्दरा में, कभी समुद्र-तट में, कभी मन्दरादि में रमण किया परंतु दोनों कभी तृप्त नहीं हुए ॥

गते बहुतिथे काले एकत्रीभूयचामराः ।
शिवस्यान्तिकमागत्य इत्थमस्तौषयन् हरम् ॥ ९ ॥

बहुत समय बीत जाने के बाद देवता इकट्ठे होकर शिव के पास गये ग्रौर इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे ॥

वृषध्वज महादेव करुणा वरुणालय ।
जहि दैत्यान् स्मरहर तारकादीन् महेश्वर ॥१०॥

हे करुणा के सागर, वृषध्वज, महादेव, कामदेव का नाश करने वाले महेश्वर ! आप तारक आदि दैत्यों का वध करें ॥

त्वद्वीर्यजातपुत्राद्धि मरिष्यति स तारकः ।
तस्मै वरः प्रदत्तो वै विधिना वरदानिना ॥११॥

तारकासुर-पुत्र आप से ही मरेगा—यह उसको ब्रह्मा द्वारा वर दिया गया है ॥

उवाच शंकरो विष्णुं प्रभविष्णुं जगत्त्रये ।
ममेदं स्खलितं वीर्यं को ग्रहीष्यति तद्वद ॥१२॥

शिव ने भगवान् विष्णु से कहा कि तीनों लोकों में कौन मेरे स्खलित वीर्य को धारण करेगा—यह मुझे बताओ ॥

गृह्णीयात् कोऽपि स प्रोच्य पातयामास तद्भुवि ।
अग्निर्भूत्वा कपोतस्तु चञ्च्वा वीर्यमभक्षयत् ॥१३॥

कोई भी इसको धारण कर ले—यह कह कर उन्होंने वीर्य को पृथ्वी पर गिरा दिया । तब कपोत का रूप धारण करके अग्नि ने उस वीर्य का भक्षण कर लिया ॥

अग्निर्जगाद भोः शम्भो दग्धोऽस्मि तव वीर्यतः ।
अजानता मया चैतत् कृतं कर्म सुराज्ञया ॥१४॥

अग्नि ने कहा—हे भगवन्, मैं आपके वीर्य के तेज से जल रहा हूँ। यह कार्य मैंने देवताओं की आज्ञा से अनजाने में ही किया था ॥

शिव आह शुचे त्वं वै शृणु वाक्यं ममादरात् ।
माघमासस्नानकर्त्रीषु स्त्रीषु स्थापयत्विदम् ॥१५॥

शिव ने कहा—हे अग्नि, तुम मेरी बात ध्यान से सुनो और माघ मास में स्नान करती हुई स्त्रियों में इसको स्थापित कर दो ॥

प्रातःकाले षण्मुनीनामागमिष्यन्ति षट्स्त्रियः ।
स्नानं कृत्वा स्त्रियस्ताहि भवेयुः शीतपीडिताः ॥१६॥

प्रातःकाल ६ मुनियों की ६ स्त्रियां स्नान करने आयेंगी। स्नान करने के बाद उन स्त्रियों को बहुत अधिक सर्दी का अनुभव होगा ॥

वह्निज्वालासमीपे ताः यास्यन्ति मम मायया ।
मम वीर्यस्य कणिका धारयिष्यन्ति योनिषु ॥१७॥

मेरी माया से प्रेरित होकर वे अग्नि के समीप जायेंगी और मेरे वीर्य की कणिका को अपनी योनि में धारण करेंगी ॥

सगर्भास्ताः भविष्यन्ति ततः स्युर्दाहपीडिताः ।
त्यक्ष्यन्ति तास्तु गंगायां गंगापि च शरस्तरे ॥१८॥

इससे वे गर्भवती हो जायेंगी और गर्भवती होने के पश्चात् उनको बहुत दाह का अनुभव होगा। इससे वे गंगा में उसका त्याग कर देंगी और गंगा भी सरकण्डों पर उसको त्याग देगी ॥

पातयिष्यति तत्रैव दिव्यबालो भविष्यति ।
एवमेवाखिलं जातं यदूचे शम्भुरग्नये ॥१९॥

इससे वहां एक अद्भुत बालक उत्पन्न होगा। इस प्रकार जो कुछ शिव ने अग्नि से कहा था वैसा ही हुआ ॥

मंगलंचाभवत्तस्मात् सुराणां सन्नृणां तथा ।
असुराणां खलानां च अत्युद्विग्नमभून्मनः ॥२०॥

इस घटनाक्रम से देवताओं का तथा सज्जनों का कल्याण हुआ और असुरों एवं दुष्टजनों का मन उद्विग्न हो गया ॥

पुत्रस्य प्राप्ति संवीक्ष्य पार्वती हृष्टमानसा ।
कोटिरत्नानि विप्रेभ्यः स्त्रीभ्यः संवरणान्यदात् ॥२१॥

पुत्र-प्राप्ति से प्रसन्न होकर पार्वती ने ब्राह्मणों को असंख्य रत्न एवं स्त्रियों को वस्त्र प्रदान किये ॥

महेशः स्वांकमारोप्य कुमारं चातिसुन्दरम् ।
पार्वत्या स्वस्त्रिया साकमत्यानन्दमविन्दत ॥२२॥

अति सुन्दर कुमार को अपनी गोद में बिठाकर शिव तथा पार्वती अति प्रसन्न हुए ॥

शक्तिर्भगवती तस्मै दिव्यशक्तिमथार्पयत् ।
शूलं पिनाकं परशुं शङ्करोलोकशङ्करः ॥२३॥

भगवती ने कुमार को दिव्य शक्ति प्रदान की तथा लोक का कल्याण करने वाले शंकर ने त्रिशूल, पिनाक-धनुष एवं परशु प्रदान किये ॥

ब्रह्माण्डस्याधिपत्यं च हरिस्तस्मै तदा ह्यदात् ।
मुदान्वितश्च ब्रह्मापि तिलकं मूर्ध्न्यचीकरत् ॥२४॥

कुमार के लिये विष्णु ने ब्रह्माण्ड का आधिपत्य प्रदान किया तथा ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसके मस्तक पर तिलक किया ॥

सिंहासने स्थापयित्वा स्तुत्वा तं षण्मुखं प्रभुम् ।
सवासवाः सर्व देवाः स्वामीतिपदमादद्दुः ॥२५॥

इन्द्र सहित सब देवताओं ने षण्मुख को सिंहासन पर बैठाकर स्तुति की और 'स्वामी' का पद प्रदान किया ॥

अथैकदा सुराः सर्वे समागत्याहुरीश्वरम् ।
कुमारेण हतो दुष्टो भविष्यति स तारकः ॥२६॥

एक बार समस्त देवता शिव के पास गये और कहा कि हे देव, तारकासुर का वध कुमार द्वारा ही होगा ॥

तस्मादद्यैव गच्छामः तारकस्य वधेच्छया ।
आज्ञां देहि कुमाराय तारकं स हनिष्यति ॥२७॥

अतः हम आज ही तारकासुर के वध की कामना से प्रस्थान कर रहे हैं। आप कुमार को उसका वध करने की आज्ञा प्रदान करें ॥

तथास्त्विति वचः प्रोच्य शिवः षण्मुखमादिशत् ।
तारकं दुष्टमसुरं निहन्तुं सुरहेतवे ॥२८॥

'तथास्तु' कहकर शिव ने षण्मुख को देवताओं के लिये तारकासुर का वध करने की अनुमति प्रदान कर दी ॥

स्कन्दनन्दनमाहस्म सामरः शशिशेखरः ।
पुत्राद्य देवरक्षार्थं जहित्वमखिलान् खलान् ॥२९॥

हे पुत्र ! तुम देवताओं की रक्षा करने के लिए तारकादि दानवों को मार डालो ॥

शंखदुन्दुभिनिर्घोषैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः ।
षण्मुखः समगाद् गेहात् हस्ते शक्तिसमन्वितः ॥३०॥

शंख और दुन्दुभि की ध्वनि से दिशाओं को बहरा करते हुए कुमार हाथ में 'शक्ति' लेकर घर से निकले ॥

पथि गच्छन् कुमारोऽसौ कलशं जलसंभृतम् ।
ददर्श गां सवत्सां च पतियुक्तां पतिव्रताम् ॥३१॥

कुमार ने मार्ग में जल से भरा हुआ कलश, वत्स सहित गाय तथा पति के साथ पतिव्रता स्त्री को देखा ॥

शिवाज्ञया पुरस्कृत्य कुमारं मण्डलेश्वरम् ।
देवताः तारकं हन्तुं रणे रणविदो ययुः ॥३२॥

शिव की आज्ञा से देवता कुमार को आगे कर के तारकासुर का वध करने के लिये युद्ध करने गये ॥

सुराणामागमं श्रुत्वा तारकः सुरमारकः ।
सेनाभिर्बहुभिर्युक्तः आजगाम रणाङ्गणे ॥३३॥

देवताओं के आगमन को सुन कर देव-शत्रु तारकासुर बड़ी सेना के साथ रणभूमि में आया ॥

तदैवासीन्नभोवाणी देवान्प्रति रणागतान् ।
कुरुध्वं युद्धमद्याशु शुभं वः संभविष्यति ॥३४॥

उसी समय देवताओं को सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई कि "तुम शीघ्र ही युद्ध करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा" ॥

वाचं ते खेचरीं श्रुत्वा तारकेण सुरारिणा ।
वीरशब्दान्प्रकुर्वन्तो युद्धं चक्रुर्महाद्भुतम् ॥३५॥

आकाशवाणी सुनकर देवताओं ने अपने शत्रु तारक के साथ वीरोचित शब्द करते हुए अद्भुत युद्ध किया ॥

कुमारो गजमारोढुमिन्द्रेण प्रार्थितोऽपिसन् ।
विमानं यानमारुह्य योधनार्थमुपस्थितः ॥३६॥

इन्द्र द्वारा हाथी पर सवार होने की प्रार्थना किये जाने पर भी कुमार विमान पर सवार होकर युद्ध करने के लिये आये ॥

तारको युयुधे युद्धे महेन्द्रेण तथाग्निना ।
संह्लादो जम्भको दैत्यो यमेन नियमेन सः ॥३७॥

तारकासुर ने महेन्द्र से, संह्लाद ने अग्नि से, जम्भकासुर ने नियमपूर्वक यमराज से युद्ध किया ॥

सुवीरो वायुना सार्धं वरुणेन बलाह्वयः ।
शुम्भः शेषेण युयुधे कुम्भः चन्द्रमसा सह ॥३८॥

सुवीरासुर ने वायुदेवता से, बलासुर ने वरुण से, शुंभासुर ने शेषराज से और कुम्भासुर ने चन्द्रमा से युद्ध किया ॥

ईशानः शम्भुना साकं विष्णुना नैऋतोऽसुरः ।
कुञ्जरो रविणा सार्धं युयुधे पविनास्त्रतः ॥३९॥

शंकर से ईशानासुर ने, नैऋत असुर ने विष्णु से, और कुञ्जरासुर ने वज्रास्त्र द्वारा सूर्य से युद्ध किया ॥

वीराणां सुखदं चैतत् अवीराणां भयावहम् ।
सुराणामसुराणां च युद्धमासीत्परस्परम् ॥४०॥

सुर और असुरों का यह युद्ध वीरों को सुख देने वाला तथा कायरों को भय देने वाला था ॥

क्रुद्धेन तारकेणाथ स्वर्गनाथः प्रताडितः ।
स्वया परमया शक्त्या पपात भुविमूर्च्छितः ॥४१॥

क्रुद्ध तारकासुर ने इन्द्र पर शक्ति से प्रहार किया जिससे इन्द्र मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े ॥

अन्ये च लोकपालाः ये ह्यसुरैर्बलवत्तरैः ।
रणे महाबलाश्चापि क्षणेनैव निपातिताः ॥४२॥

अन्य बलवान आठ लोकपालों को भी बलशाली असुरों ने धराशायी कर दिया ॥

एतस्मिन्नेव काले तु वीरभद्रो बलीश्वरः ।
घोरेण विशिखेनाशु जघानासुर तारकम् ॥४३॥

इसी बीच महाबली वीरभद्र ने एक भयंकर बाण से तारकासुर पर प्रहार किया ॥

तयोर्वीरद्वयोर्द्वन्द्वयुद्धमासीन्निरूपमम् ।
वीराणां युद्धकर्तॄणां परमं रोमहर्षणम् ॥४४॥

उन वीरों का द्वन्द्व युद्ध बहुत ही अद्भुत था और युद्ध करने वाले वीरों को रोमांचित करने वाला था ॥

युयुधातेऽतिसंरब्धौ तौ बुधाङ्गारकाविव ।
वीरभद्रः तारकश्च न च कोऽपि पराजितः ॥४५॥

वीरभद्र और तारकासुर ने वुध और अङ्गारक (मंगल) की भांति युद्ध किया और कोई भी पराजित नहीं हुआ ॥

ब्रह्मोवाच कुमार त्वं शृणु मे वाक्यमादरात् ।
अन्यवध्यो न दैत्योऽसौ मद्वराच्छंकरात्मज ॥४६॥

ब्रह्मा ने कहा—तात, मैं तुम्हें रहस्य की बात बताता हूँ। यह दैत्य शिवपुत्र के बिना किसी अन्य द्वारा मारा जाने वाला नहीं है ॥

विनिश्चित्यासुरवधं कुमारः शंकरस्य सः ।
विमानादवतीर्याशु तारकं हन्तुमुद्यतः ॥४७॥

तब उस दैत्य का वध करने का निश्चय करके कुमार शीघ्र ही विमान से उतर कर प्रहार करने के लिये तैयार हो गये ॥

तारकस्य कुमारस्य संग्रामोऽतिभयंकरः ।
अभूदभूतपूर्वश्च पश्यतामतिभीकरः ॥४८॥

तब तारक और कुमार का अभूतपूर्व भयंकर युद्ध हुआ जोकि देखने वालों को भयभीत करने वाला था ॥

कुमारः तारकं शक्त्या जघानाशु स्तनान्तरे ।
पपात सहसा भूमौ श्वासान्मुञ्चन्मुहुर्मुहुः ॥४९॥

कुमार ने शक्ति द्वारा तारकासुर के स्तनों के मध्य (छाती) में प्रहार किया जिससे वह बार-बार श्वास लेता हुआ मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥

तस्मात्प्रहारादुत्थाय कुमारं तारकोऽहनत् ।
मूर्च्छितः पतितः क्षोण्यां संज्ञामापक्षणाच्च सः ॥५०॥

तारकासुर ने उठकर प्रहार द्वारा कुमार को भी मूर्छित कर दिया परन्तु कुमार भी चेतना प्राप्त कर क्षण में ही उठ कर खड़ा हो गया ॥

क्षणेन हन्तुं शक्तोऽसि किं क्रीडसि दुरात्मना ।
कुर्वस्मत्कामना पूर्ति कीर्ति च भुवनत्रये ॥५१॥

हे कुमार, आप तो इस असुर को क्षण भर में ही मारने में समर्थ हैं। फिर इस दुरात्मा के साथ क्यों खेल रहे हैं । शीघ्र ही हमारी कामना की पूर्ति करिये और त्रिभुवन में यश फैलाइये ॥

इमां श्रुत्वाकाशवाणीं कुमारस्तमताडयत् ।
ततो हतः पपाताशु सोऽसुरः पृथिवीतले ॥५२॥

यह सुन कर कुपित कुमार ने पुनः शक्ति से प्रहार किया जिससे वह असुर पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया ॥

कुमारमग्रतः कृत्वा स्तुत्वा सुरगणश्च तम् ।
पुष्पवृष्टिं चकाराशु तस्योपरि शिवस्य च ॥५३॥

कुमार को आगे करके देवताओं ने उनकी स्तुति की तथा उन पर और शिव पर पुष्प-वृष्टि की ॥

तस्मै नमः तारकघातिपुत्रिणे,
तस्मै नमः तारकराजधारिणे ।
तस्मै नमः तारकशम्भुनाम्ने,
तस्मै नमः तारक मंत्रदायिने ॥५४॥

जिनके पुत्र ने तारकासुर का वध किया, जो तारकराज चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करते हैं, जिनका "शम्भु" नाम भवसागर से पार कराने वाला है तथा जो भवतारक मंत्र प्रदान करने वाले हैं, उन शिव को बार-बार नमस्कार है ॥

शिवं प्रणम्येन्द्रपुरस्सराः सुराः,
प्रसादमासाद्य ययुर्निजान् गृहान् ।
षडाननेनाथ निजात्मजेन,
शिवोऽपि धाम स्वकमाजगाम ॥५५॥

इन्द्र सहित देवताओं ने शिव को प्रणाम किया तथा प्रसाद लेकर अपने-अपने घर गये तथा अपने पुत्र षडानन के साथ शिव भी अपने स्थान में आ गये ॥

अयंच पञ्चमः सर्गः समाप्तोऽभवदुत्तमः ।
चतुर्दशप्रबन्धानां भ्रातुश्चैतस्य काव्यस्य ॥५६॥

चतुर्दश प्रबन्धों के भ्राता इस काव्य में यह उत्तम पाँचवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये स्कन्दोत्पत्ति
तथा तद्द्वारातारकहननवर्णनात्मकः
पञ्चमः सर्गः ॥

अथ शिवंपुत्रगणेशवर्णनात्मकः
षष्टः सर्गः

—०—

स्कन्दस्य शिवपुत्रस्य जन्मकालात्तु पश्चिमे ।
अतीव स्वल्पकाले हि गणेशस्योद्भवोऽभवत् ॥१॥

शिव-पुत्र स्कन्द के जन्म के थोड़े समय वाद ही गणेश का जन्म हुआ ॥

एकदा श्रीमती देवी पार्वती विजया जया ।
मिलिताः विमृशन्तिस्म तिस्रोप्यथ परस्परम् ॥२॥

एक बार पार्वती जी, विजया एवं जया तीनों मिलकर विचार कर रही थीं ॥

शिवस्य तु गणाः सर्वे शिवादेशपरायणः ।
अस्मादाज्ञाकरस्तेषु विद्यते नहि कश्चन ॥३॥

शिव के समस्त गण शिव की आज्ञा का ही पालन करते हैं किन्तु उनमें कोई भी हमारी आज्ञा का पालन करने वाला नहीं है ॥

जयोक्तं विजयोक्तं च निशम्य भगवत्युमा ।
सर्वथा सत्यमेतद्वै युवाभ्यां यदुदीरितम् ॥४॥

जया और विजया सखियों की बात सुन कर पार्वती बोली—हे सखियो, आप दोनों ने ठीक कहा है ॥

एकदा पार्वतीदेव्या स्नानस्य समये शिवः ।
नन्दिनं परिभत्स्यारं समागच्छत् गृहान्तरे ॥५॥

एक बार पार्वती जी जब स्नान कर रही थीं उस समय शिव नन्दी की अवहेलना करके अन्दर घर में आ गये ॥

आयान्तं स्वपतिं वीक्ष्य सोत्तस्थौ लज्जिता भृशम् ।
गते शिवे स्वशरीरात्पुरुषं कञ्चन व्यधात् ॥६॥

उनको आया देख कर वे लज्जित होकर खड़ी हो गईं तथा शिव के चले जाने पर अपने शरीर से एक पुरुष की रचना की ॥

मत्पुत्रस्त्वं मयैवाद्य निर्मितोऽसि वरानन ।
मदाज्ञापालनकृते त्वदृते नहि कश्चन ॥ ७ ॥

(और कहा) तुम मेरे पुत्र हो और मैंने ही तुम्हारी रचना की है क्योंकि मेरी आज्ञा का पालन करने वाला तुम्हारे सिवाय कोई अन्य नहीं है ॥

द्वारपालो भवत्वं वैमदाज्ञामन्तरा गृहे ।
कोऽपि नायाद् बलात्तात कार्यं कार्यं त्वयेति मे ॥ ८ ॥

तुम द्वारपाल बन जाओ। मेरी आज्ञा के विना कोई भी घर में न आ सके, यह काम करो ॥

कथयित्वेति देवी तं यष्टिहस्तं गणेश्वरम् ।
स्वद्वारि स्थापयामास मुखमाचुम्ब्य तस्य वै ॥ ९ ॥

यह कह कर पार्वती ने गणेश का स्नेहपूर्वक चुम्बन करके उनको द्वार पर नियुक्त कर दिया ॥

स्थापयित्वा च तं द्वारे स्नानं चक्रे सदैव सा ।
अधोवस्त्रं धारयित्वा कारयन्ती शिरादिकम् ॥१०॥

द्वार पर खड़ा करके ही वे स्नान आदि करती थीं तथा अधोवस्त्र पहन कर केश आदि ठीक करती थीं ॥

एकदा स्नानवेलायां भगवान् शिव आगतः ।
द्वाःस्थं गणेशं नापृच्छ्य गन्तुमैच्छद्गृहान्तरे ॥११॥

एक बार जब पार्वती स्नान कर रही थीं तब भगवान् शिव द्वार-स्थित गणेश से पूछे बिना ही अन्दर जाने लगे ॥

उवाच स शिवं देव, मातुरादेशमन्तरा ।
मज्जनार्थं स्थिता माता न यातव्यं त्वयाऽधुना ॥१२॥

गणेश शिव से बोला—हे देव, माता की आज्ञा के बिना आप भीतर नहीं जायें क्योंकि माता जी स्नान कर रही हैं ॥

रोधनार्थं स्विकां यष्टिं गृह्णन्तं तं गणेश्वरम् ।
शिव आह न जानीषे पितरं मां महेश्वरम् ॥१३॥

यष्टि हाथ में लेकर रोकने के लिए उद्यत गणेश को शिव ने कहा कि क्या तुम अपने पिता मुझको नहीं पहचानते हो ? ॥

ऊचे स ज्ञातवानस्मि पिता त्वं मे महेश्वर ।
मातुराज्ञा मयानैव लंघनीया करोमि किम् ॥१४॥

गणेश ने कहा कि मैं जानता हूँ कि आप मेरे पिता महेश्वर हैं किन्तु क्या करूँ माता की आज्ञा का उल्लंघन मैं नहीं कर सकता हूँ ॥

पितुर्दशगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते ।
उच्यते मुनिभिः सर्वैः धर्ममर्म विशारदैः ॥१५॥

माता का गौरव पिता से दस गुना अधिक होता है, ऐसा धर्म का मर्म जानने वाले मनु आदि सभी मुनियों ने कहा है ॥

इत्युक्त्वापि महेशं तं विशन्तं जननीगृहे ।
महाक्रुद्धो गणेशोयं दण्डेनाताडयद् भृशम् ॥१६॥

ऐसा कहे जाने पर भी शिव को माता के घर में प्रवेश करते हुए देखकर क्रुद्ध गणेश ने बारबार शिव जी पर दण्ड-प्रहार किया ॥

ताडितः स शिवस्तत्र स्थितः क्रोधयुतस्ततः ।
बहिरेवागतस्तावद् वीरभद्रादिकोगणः ॥१७॥

दण्ड द्वारा ताड़ित किये हुए शिव क्रुद्ध होने पर भी बाहर ही खड़े रहे । इतने में वीरभद्रादिगण आ पहुँचे ॥

वीरभद्रस्तमाहाशु गणेशं शंकराज्ञया ।
कोऽसि कस्यासि रे वीर किं त्वं कर्तुमिहस्थितः ॥१८॥

शंकर की आज्ञा से वीरभद्र ने गणेश से पूछा कि तुम कौन हो ? किसके पुत्र हो ? और यहां क्या करने के लिये मार्ग रोके खड़े हो ॥

अस्माद् द्वाराद् गच्छ शीघ्रं जीवितुं यदि वाञ्छसि ।
अहं महेशानुज्ञानः पृच्छाम्येतत् दयान्वितः ॥१९॥

यदि जीवित रहने की इच्छा है तो इस द्वार से शीघ्र निकल जाओ । शंकर की आज्ञा से मैं दया के कारण कह रहा हूँ ॥

वीरभद्रवचः श्रुत्वा हसित्वा स गणेश्वरः ।
आह सौम्य न जानासि गिरिजायाः सुतोस्म्यहम् ॥२०॥

वीरभद्र के वचन सुनकर गणेश ने हंसकर कहा कि मूर्ख, तुम नहीं जानते कि मैं पार्वती का पुत्र हूँ ॥

वीरभद्रः शिवं प्राह ब्रवीत्येष शिवासुतम् ।
तं वस्तुतस्तु जानासि त्वमेव न वयं प्रभो ॥२१॥

वीरभद्र ने कहा कि यह अपने को पार्वती का पुत्र बता रहा है । वस्तुतः यह कौन है यह आप ही जानते हैं, हम नहीं जान सकते ॥

भगवानाह भो वीर दूरतः क्रियतामयम् ।
क्लीबवत् पृच्छसि त्वं किं बारंवारं समाग्रतः ॥२२॥

शंकर ने कहा कि बार-बार नपुंसकों की तरह क्या पूछ रहे हो । इसको यहां से हटा दो ॥

वीरभद्रस्तमाह स्म मूर्ख त्वं न शिवासुतः ।
बलं मे नैव जानासि अतः शीघ्रं मरिष्यसि ॥२३॥

वीरभद्र ने कहा कि हे मूर्ख, तू पार्वती-पुत्र नहीं है । तू मेरे बल को जानता नहीं है अतः शीघ्र ही मेरे हाथों से मारा जायेगा ॥

इत्युक्तो वीरभद्रेण प्राह क्रुद्धो गणेश्वरः ।
बलं दर्शय रे शीघ्रं कथं व्यर्थं वदस्यथ ॥२४॥

वीरभद्र के इस प्रकार कहने पर गणेश बोले, हे मूर्ख, शीघ्र अपने बल को दिखाओ, व्यर्थ बकवास क्यों करते हो ॥

अहमस्मि शिवापुत्रः त्वं शिवस्य गणो महान् ।
वीराः कुर्वन्ति कर्त्तव्य न स्वं शंसन्ति मूर्खवत् ॥२५॥

मैं पार्वती का पुत्र हूँ तथा तुम शिव के गण हो । जो कुछ करना है शीघ्र ही कर डालो, व्यर्थ मत बोलो । वीर आत्मश्लाघा नहीं किया करते ॥

वीरोऽसि वीरभद्र त्वं पित्राज्ञापरिपालकः ।
अहन्तु बालकोह्यस्मि मात्राज्ञा-परिपालकः ॥२६॥

हे वीरभद्र, तुम वीर हो और पिता की आज्ञा का पालन करने वाले हो । मैं तो बालक हूँ और माता की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ ॥

पश्यतात् पार्वती माता स्वस्य बालस्य चेष्टितम् ।
शिवोऽपि पश्यतादद्य वीरभद्रस्य वीरताम् ।।२७।।

आज माता पार्वती अपने बालक की चेष्टाओं को देखे, तथा शिव भी वीरभद्र के पराक्रम को देख लें ।।

इत्युक्त्वा परिघेनाशु बालोऽबाल-पराक्रमः ।
वीरभद्रं पराजिग्ये क्षणादन्यगणानपि ।।२८।।

यह कहकर दिव्य पराक्रम वाले गणेश ने वीरभद्र को तथा आये हुए अन्य गणों को परिघ के प्रहार से पराजित कर दिया ।।

इन्द्रादिकान् देवगणान् प्रमुखं षण्मुखं विना ।
भूतप्रेतपिशाचांश्च सर्वानाहूतवान् रणे ।।२९।।

गणेश ने इन्द्रादि देवताओं का बिना कार्तिकेय के समस्त भूत-पिशाचों का रण में आह्वान किया ।।

यस्य यस्य च यच्छस्त्रमस्त्रं चैव बभूव ह ।
तेन तेन हि तत्सर्वं गणेशोपरि पातितम् ।।३०।।

जिस-जिस के पास जो शस्त्र या अस्त्र था, उसने एक-साथ उससे गणेश पर प्रहार किया ।।

एकेन बालकेनैव सर्वे देवाः पराजिताः ।
एकेन परिघास्त्रेण किमाश्चर्यमतः परम् ।।३१।।

एक बालक ने एक परिघ से समस्त देवताओं को पराजित कर दिया । इससे बढ़कर आश्चर्य क्या होगा ।।

पृथिवी कम्पिता जाता समुद्रसहिता तदा ।
पर्वताः पतिता आसन् सुखिन्नमभवन्नभः ।।३२।।

उस समय समुद्र-सहित पृथ्वी काँपने लगी, पर्वत टूटने लगे, तथा आकाश मलिन हो गया ।।

तदा सुरगणाः सर्वे मिलित्वा शंकरान्तिकम् ।
समागत्य स्तुवन्तिस्म रक्ष रक्ष महाप्रभो ।।३३।।

तब सब देवता शंकर के पास गये और स्तुति करते हुए कहा, हे प्रभो, हमारी रक्षा करो ।।

देवानां प्रार्थनां श्रुत्वा शंकरो लोकशंकरः ।
युद्धं कर्तुमना जातः तेन बालेन कोपिना ।।३४।।

देवताओं की प्रार्थना सुनकर शंकर उस क्रुद्ध बालक के साथ युद्ध करने के लिए तत्पर हो गये ।।

शंकरो गणनाथेन युद्धं चक्रे चिरं परम् ।
नैव जेतुं समर्थोऽभूत् शिवाशक्तियुतं च तम् ।।३५।।

शंकर ने भी गणेश के साथ बहुत समय तक युद्ध किया, किन्तु वे भी पार्वती की शक्ति से युक्त उसको जीतने में समर्थ नहीं हुए ।।

येन केन प्रकारेण हन्तव्योऽयं वृषध्वज ।
शक्तिपुत्रो महाशक्तिः विष्णुराह शिवं प्रति ।।३६।।

विष्णु ने कहा कि हे शिव ! महाशक्ति यह शक्ति का पुत्र किसी भी तरह से मारा जाना चाहिये । आप कृपा करके इसको मारो ।।

गणेशो दृष्टवान् शम्भुं शूलहस्तं रुषान्वितम् ।
हन्तुकामं निजं वीरो मातुः पादावनुस्मरन् ।।३७।।

गणेश ने शूल-सहित मारने की इच्छा से आते हुए शंकर को देखा और अपनी माता के चरणों का ध्यान किया ।।

जघान परिघास्त्रात्तं शूलहस्तं रुषान्वितम् ।
पपात हस्तात्तच्छूलं पिनाकं स समाददे ।।३८।।

तब उन्होंने शूलधारी शंकर पर परिघ से प्रहार किया । उनके हाथ से शूल गिर गया । तब उन्होंने पिनाक धनुष को उठा लिया ।।

तमप्यपातयद् भूमौ मातृशक्तिप्रवर्धितः ।
महेशस्य गणेशोऽसौ सहसश्चातिसाहसः ।।३९।।

हँसकर गणेश ने माता की शक्ति के प्रभाव से अति साहस करके महादेव के पिनाक को भी भूमि पर गिरा दिया ।।

विष्णुना स्वस्य चक्रेण परिघस्तस्य खण्डितः ।
यष्ट्या स्वया स तं विष्णुं संजघान स्तनान्तरे ।।४०।।

विष्णु ने अपने चक्र से गणेश के परिघ को नष्ट कर दिया । तब उन्होंने (गणेश ने) अपनी यष्टि से विष्णु पर प्रहार किया ।।

एतस्मिन्नेव समये तद्-दृष्टिं मायया स्वया ।
विलुप्य शंकरः शूलात्तच्छिरो ह्यकरोत्पृथक् ।।४१।।

इसी बीच अपनी माया से गणेश की दृष्टि को विलुप्त करके शंकर ने शूल से उसका सिर काट दिया ।।

निशम्य नारदात् सर्वं गणेशमरणादिकम् ।
प्रकुप्य विविधाः शक्तीः पार्वती समसर्जयत् ।।४२।।

नारद के मुख से गणेश के मरण को सुनकर पार्वती ने क्रोध करके नाना प्रकार की शक्तियों को उत्पन्न किया ।।

आह ताः प्रलयस्त्वद्य कर्तव्यो मन्निदेशतः ।
देव्याज्ञप्ताश्च ताः सर्वाः प्रलयं कर्तुमुद्यताः ।।४३।।

पार्वती ने उन शक्तियों से कहा कि मेरी आज्ञा से तुम आज प्रलय कर दो । इस प्रकार देवी की आज्ञा से वे शक्तियाँ प्रलय करने के लिये उद्यत हो गई ।।

ब्रह्म-विष्णु-हराद्याश्च निर्जरा मिलितास्तदा ।
स्तुत्या प्रसादयामासुः गिरिजां जगदम्बिकाम् ।।४४।।

तब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं ने मिलकर पार्वती की स्तुति करके उनको प्रसन्न किया ॥

जय देवि महेशसेविते जय-जय दक्ष-सुते पतिव्रते ।
जय माहिषदेहशायिनि जय-जय रक्तकरक्तपायिनि ॥४५॥
जय चण्डविनाशकारिणि, जय-जय मुण्डशरीरदारिणि ।
जय दानव-कालयामिनि, जय-जय शंकरदिव्यभामिनि ॥४६॥
जय कालि कपालिमण्डने जय-जय शुम्भनिशुम्भखण्डने ।
जय भक्तजनानुकम्पने जय-जय पार्वति दिव्यदर्शने ॥४७॥

हे महेशपत्नि देवि, तुम्हारी जय हो, हे दक्षपुत्रि पतिव्रते, तुम्हारी जय हो। महिषासुर की देह पर पैर रखने वाली रक्तबीज का रक्तपान करने वाली, तुम्हारी जय हो। चण्ड का विनाश करने वाली, मुण्ड को मारने वाली, भक्तजनों पर दया करने वाली, शुम्भ-निशुम्भ को मारने वाली हिमाचल-पुत्रि पार्वति, तुम्हारी जय हो ॥

माया समस्तसुरकार्यात्मिका न चअपायादिदोषसहिता ,
पुण्यापरं सकलगुणग्राभिमानततिशून्या त्वमत्रभवती ।
कर्त्री पुरा तदनुभर्त्री ततो नु खलु हर्त्री समस्तजगतः ,
दक्षा स्वभक्तजनरक्षाविधौ विबुधपक्षावलम्बनकरी ॥४८॥

अर्थ स्पष्ट है ॥

स्तुत्यानया प्रसन्ना सा चण्डिका प्राह तान्सुरान् ।
मत्पुत्रो यदि जीवेत् वै तदा स्याच्छं जगत्त्रये ॥४९॥

इस स्तुति से प्रसन्न होकर पार्वती ने देवताओं से कहा, कि मेरे पुत्र के जीवित हो जाने पर ही तीनों लोकों में शान्ति होगी ॥

सर्वपूज्यो भवेच्चायं सर्वकर्मसु सर्वदा ।
इत्युक्तास्ते समागत्य शंकराय न्यवेदयन् ॥५०॥

सब प्रकार के कामों में इसकी (गणेश की) सदा ही पूजा की जायेगी। देवताओं ने यह सब वृत्तान्त शंकर को जाकर सुनाया ॥

तच्छ्रुत्वा शंकरो वीरमाह गच्छ त्वमुत्तरे ।
प्रथमं यो मिलेत्तत्र तस्यानीय च शीर्षकम् ॥५१॥

देवताओं का कथन सुनकर शंकर ने कहा कि हे वीरभद्र, तुम उत्तर दिशा में जाओ, वहाँ सबसे पहले जो प्राणी मिले उसका सिर काट कर ले आओ ॥

संयोजय गणेशस्य सुन्दरेऽस्मिन्कलेवरे ।
तदायं जीवितो भूयान्नात्र कार्यश्च संशयः ॥५२॥

यदि उसको गणेश की देह पर लगा दिया जाये, तो निःसन्देह यह जीवित हो जायेगा ॥

शिवस्य वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्ततोऽगमत् ।
प्राप्तस्य चैकदन्तस्य हस्तिनः शिर आनयत् ॥५३॥

शिव के वचन सुनकर वीरभद्र जाकर प्रथम प्राप्त एक दांत वाले हाथी का सिर ले आये ॥

संयोज्य तच्छरीरेण वेदमन्त्रेण चैव हि ।
स्मृत्वा शिवं वीरभद्रो न्यक्षिपत्तत्कलेवरे ॥५४॥

वेदमन्त्र पढ़ कर एवं शिव का स्मरण करके वीरभद्र ने उस शिर को गणेश के कबन्ध पर लगा दिया ॥

अभिमन्त्रितपानीयादुत्थितः सुप्तवत्स वै ।
सर्वैः देवैः संस्तुतः सन् प्रसन्नवदनोऽभवत् ॥५५॥

अभिमन्त्रित जल के प्रभाव से वे इस प्रकार उठ खड़े हुए, मानो सोकर उठे हों, तथा देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने पर प्रसन्न हो गये ॥

तं वीक्ष्य जीवितं पुत्रं मुमुदाते शिवाशिवौ ।
मोदन्ते स्म तथान्येऽपि देवर्षिनरकिन्नराः ॥५६॥

अपने पुत्र को जीवित देख कर शिव-पार्वती अति प्रसन्न हुए, तथा देवर्षि किन्नरादि भी प्रसन्न हुए ॥

पुनश्चासौ सुरगणैर्गणाध्यक्षपदे कृतः ।
सर्वप्रथम - पूज्यश्च सर्वकार्येषु सर्वदा ॥५७॥

फिर देवताओं ने उनको गणाध्यक्षपद पर प्रतिष्ठित किया, तथा सभी कार्यों में उनकी प्रथम पूजा का विधान किया ॥

तदा सर्वे सुरगणाः तं प्रणम्य गणेश्वरम् ।
गणेशपूजनं चक्रुर्नानावस्तुभिरादरात् ॥५८॥

तब समस्त देवताओं ने गणेश को प्रणाम किया और आदरपूर्वक नाना वस्तुओं से उनकी पूजा की ॥

ब्रह्मविष्णुहरा ऊचुः यथा पूज्याः त्रयो वयम् ।
तथैव गणनाथोऽयं पूज्यः स्यात् सर्वकर्मसु ॥५९॥

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ने कहा कि जिस प्रकार हम तीनों पूज्य हैं, उसी प्रकार सभी कार्यों में ये गणेश भी पूज्य होंगे ॥

पुरास्य पूजनं कृत्वा स्तुत्वा चैनं नरो भवेत् ।
निर्विघ्नः सर्वकार्येषु श्रुतिस्मृतिमतं त्विदम् ॥६०॥

प्रथम इनकी पूजा तथा स्तुति करने से मनुष्य सभी कार्यों में विघ्न-मुक्त हो जाता है, यह श्रुति-स्मृति का मत है ॥

ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवश्च देवाः,
सवासवाद्याः स्वगृहानगच्छन् ।

षडाननश्चापि गजाननश्च,
श्रीभैरवो वीरभद्रस्तथैव ॥६१॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्र सहित सभी देवता तथा कार्तिकेय, गणेश, भैरव और वीरभद्र अपने-अपने स्थान पर गये ॥

षष्ठोऽयं गतवान् सर्गो गरिष्ठो गुणवत्तया ।
चतुर्दश-प्रबन्धानां भ्रातुश्चैतस्य काव्यस्य ॥६२॥

चतुर्दश प्रबन्धों के भ्राता इस काव्य में वरिष्ठ गुणों से युक्त छटा सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
गजाननोत्पत्तिवर्णनात्मकः षष्ठः सर्गः ॥

अथ शिवद्वारात्रिपुरदाहवर्णनात्मकः

सप्तमः सर्गः

—०—०—

स्कन्देन शिव-पुत्रेण निहते तारकासुरे।
तस्य पुत्राः त्रयो दैत्या बहुदुःखं प्रपेदिरे ॥१॥

शिवपुत्र-स्कन्द द्वारा तारकासुर का वध कर दिये जाने से उसके तीन दैत्य पुत्रों को अति दुःख हुआ ॥

तेषु ज्येष्ठः तारकाक्षः विद्युन्माली च मध्यमः।
तृतीयः कमलाक्षश्च त्रयोप्येते महाबलाः ॥२॥

ज्येष्ठ का तारकाक्ष था, दूसरे का विद्युन्माली तथा तीसरे का नाम कमलाक्ष था, और ये तीनों ही महावली थे ॥

तपः तेपुस्तपो घोरं कृत्वा मेरौ निजाश्रमम्।
देवद्रुहः त्रयोप्यासन् दृढचित्ताश्च संयताः ॥३॥

तीनों ही देवद्रोही, दृढ-चित्त तथा संयत थे। उन तीनों ने सुमेरु-पर्वत पर आश्रम बनाकर घोर तप किया ॥

ग्रीष्मकाले सूर्यतापं सर्वं मूर्धन्यधारयन्।
वर्षासु वृष्टिधाराश्च गतवस्त्रा गतासनाः ॥४॥
निराधारा निराहारा धैर्येण परमेण ते।
शिशिरे तोय-मध्यस्था विधिमुद्दिश्य तेपिरे ॥५॥

उन्होंने ग्रीष्म-ऋतु में धूप तथा वर्षा ऋतु में वृष्टिधारा को सहते हुए बिना वस्त्र, बिना आसन तथा बिना आहार के, शिशिर-ऋतु में पानी के बीच में रह कर ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए तपस्या की ॥

किं बहूक्तेन वर्षाणां शतकं चोर्ध्वबाहवः ।
तपस्तेपुः त्रयोप्येते दिवारात्रमतन्द्रिताः ।।६।।

अधिक क्या कहा जाये । उन्होंने सौ वर्ष तक ऊपर हाथ उठाकर दिन-रात तपस्या की ।।

प्रादुर्भूय ततो ब्रह्मा वरं ब्रूताह तान्प्रति ।
प्रसन्नोऽस्मि महादैत्या युष्मत्त्यागतपोव्रतैः ।।७।।

तब ब्रह्मा ने प्रकट होकर कहा कि मैं तुम्हारे त्याग एवं तप से बहुत प्रसन्न हूँ; अतः तुम कोई वर मांगो ।।

दैत्या ऊचुर्यदि भवान् प्रसन्नोऽस्ति दयानिधे ।
अवध्यत्वं च सर्वेभ्यो देवेभ्यो देहि नो विधे ।।८।।

दैत्यों ने कहा कि यदि आप हम पर प्रसन्न हैं, तो हम सब देवताओं से अवध्य हों, ऐसा वर दो ।

ब्रह्मोवाचापरं दैत्या वरं वृणुत साम्प्रतम् ।
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।।९।।

ब्रह्मा ने कहा कि इस समय तुम कोई अन्य वर मांग लो, क्योंकि जो उत्पन्न हुआ है उसकी अवश्य ही मृत्यु होगी, तथा जिसने शरीर त्याग दिया है; उसका जन्म अवश्य होगा ।।

दैत्या ऊचुर्वरेण त्वं पुराणि त्रीणि देहि नः ।
स्वर्णमयं रजतमयं वज्रायसमयं तथा ।।१०।।

दैत्यों ने कहा कि वर द्वारा आप हमें तीनों प्रकार के स्वर्णमय, रजतमय तथा लौहमय नगर प्रदान करें ।।

निर्वैरः कृत्तिवासा यो वन्द्यः पूज्यश्च नो ह्यपि ।
असंभाव्यैकबाणेन भिन्द्यात्तानि पुराणि सः ।।११।।

जो व्यक्ति वैररहित हो, कृत्तिवासा हो, हमसे भी पूज्य हो, वह ही एक बाण से उन तीनों पुरों का भेदन कर सकेगा ॥

एवमस्त्विति तानुक्त्वा ब्रह्मान्तर्धानमाययौ ।
आज्ञां ददौ मयार्थं च कुर्वीदृङ् नगरत्रयम् ॥१२॥

एवमस्तु कह कर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये, तथा मयासुर को इस तरह के तीन नगर बनाने का आदेश दिया ॥

मयासुरोऽपि नगरत्रयं चक्रे क्रमेण सः ।
काञ्चनं राजतं चैव वज्रायसमयं तथा ॥१३॥

मयासुर ने एक सोने का, एक चांदी का तथा एक लोहे का नगर बनाया ॥

स्वर्गे दिवि च भूमौ च क्रमाज् ज्ञेयानि तानि वै ।
पुरत्रयं ते संप्राप्य भोगान् बुभुजिरेऽखिलान् ॥१४॥

वे क्रमशः स्वर्ग में, आकाश में तथा भूमि पर स्थित थे । नगरों को प्राप्त करके वे समस्त भोगों को भोगने लगे ॥

प्रासादैः शोभितं दिव्यैः कैलासशिखरोपमैः ।
दिव्यस्त्रीजनसंकीर्णैः गन्धर्वैः सिद्धचारणैः ॥१५॥
शिवालयैः प्रतिगृहम् अग्निहोत्रैः प्रतिष्ठितम् ।
ब्राह्मणैः ससुतैर्धीरैः वेदाध्ययनतत्परैः ॥१६॥
सर्वान् देवान् पराजित्य प्रविश्य स्वपुरेषु ते ।
चक्रिरे त्रिजगद्राज्यं महान् कालो गतस्ततः ॥१७॥

कैलास शिखर के समान दिव्य प्रासादों से युक्त, दिव्य स्त्रियों, गन्धर्वों, सिद्ध चारणों से परिपूर्ण, प्रत्येक गृह में शिवालय तथा अग्नि-होत्र से युक्त एवं वेदाध्ययन में लगे हुए ब्राह्मणों से युक्त उन नगरों में

उन्होंने देवताओं को पराजित करके प्रवेश किया, तथा बहुत समय तक तीनों लोकों का शासन किया ॥

एकदा दुःखिता देवा ब्रह्माणं शरणं ययुः ।
दुःखं निवेदयामासुः तारकासुर-सूनुजम् ॥१८॥

एक बार देवता तारकासुर के पुत्रों से दुःखित होकर ब्रह्मा की शरण में गये, और उनमें होने वाले दुःख को उन्हें सुनाया ॥

ब्रह्मोवाच न भेतव्यं तारकस्य सुतैः सुराः ।
त्रिपुराणां वधोपायमाचक्षे भवतां पुरः ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा कि तारकासुर के पुत्रों से आप लोग न डरें, मैं आपको त्रिपुरों को नष्ट करने का उपाय बताता हूँ ॥

मत्तो विवर्धिता दैत्या न मत्तोऽर्हन्ति वै वधम् ।
विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् ॥२०॥
शंकरः प्रार्थनीयो वै सर्वैः देवैः सवासवैः ।
स प्रसन्नो भवेत्कार्यं क्षिप्रमेव विधास्यति ॥२१॥

मैंने ही दैत्यों को इतना उत्कर्ष प्रदान किया है, अतः अब इनका उच्छेद मेरे द्वारा होना उचित नहीं है, क्योंकि विष-वृक्ष को भी पोषित करके उसको स्वयं काटना उचित नहीं होता । आप सब इन्द्रसहित शंकर के पास जायें, प्रसन्न होकर वे अवश्य आपका कार्य पूरा करेंगे ॥

इत्युक्ताः ब्रह्मणा देवा महादेवानुकीर्तनम् ।
स्तोत्रैः मंत्रैः प्रकुर्वन्तः प्राहुः विनतमस्तकाः ॥२२॥

ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर देवताओं ने स्तोत्रों एवं मन्त्रों द्वारा शिव की स्तुति करते हुए नतमस्तक होकर कहा ॥

त्रैलोक्यं स्ववशे नीतं देव भ्रातृयुतेन वै ।
तारकाक्षेण दुष्टेन किं कुर्मो वद भोः प्रभो ॥२३॥

हे देव, अपने भाइयों सहित तारकाक्ष ने तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया है, अब हम क्या करें ॥

मुमोचौष्ठपुटं शम्भुः त्रिपुराध्यक्ष एष वै ।
वर्तते चाति मे भक्तः केन यत्नेन हन्यताम् ॥२४॥

हे देवताओ, यह त्रिपुराध्यक्ष मेरा बड़ा भक्त है, कहो, इसे किस तरह से मारा जाये ॥

विष्णुरानीयतां पार्श्वे भवद्भिर्मम सम्मतेः ।
तमेव कथयिष्यामि निरपायमुपायकम् ॥२५॥

आप विष्णु को मेरे पास ले आयें, मैं उनको ही एक अव्यर्थ उपाय बताऊँगा ॥

तैरानीतं महाविष्णुं प्रभविष्णुं शिवोऽवदत् ।
एकं मायाविनं विष्णो सृज पुरुषमात्मनः ॥२६॥

देवताओं द्वारा बुला कर लाये गये विष्णु से उन्होंने कहा कि आप अपने शरीर से मायावी पुरुष उत्पन्न करें ॥

अर्हन्नामक विख्यातं मुण्डिनं दण्डधारिणम् ।
तारकाक्षादिधर्मस्य नाशकं तुण्डवाससम् ॥२७॥

जो अर्हन् नाम से विख्यात हो तथा जो मुण्डित मस्तक एवं दण्ड धारण करने वाला हो, मुख पर वस्त्र रखने वाला और तारकाक्षादि के धर्म का नाश करने वाला हो ॥

शिवाज्ञया तदोत्सृष्टो विष्णुना तादृशः पुमान् ।
आह किं क्रियतां विष्णो मामाज्ञापय सत्वरम् ॥२८॥

शिव की आज्ञा से विष्णु ने एक ऐसे पुरुष को उत्पन्न किया, जिससे उत्पन्न होकर विष्णु से करणीय कार्य के विषय में आज्ञा माँगी ॥

तमाह भगवान् विष्णुर्मदङ्गज ममाज्ञया ।
मोहनीयाः त्वया दैत्याः सर्वेः त्रिपुरवासिनः ॥२६॥

विष्णु ने कहा, पुत्र, तुम मेरी आज्ञा से समस्त त्रिपुरवासी दैत्यों को मोहित करो ॥

दीक्षा देया त्वया तेभ्यो गत्वा तन्नगरेषु च ।
मदाज्ञयासौ दोषस्ते न भविष्यति कश्चन ॥३०॥

उनके नगरों में जाकर तुम उन्हें दीक्षा दो । मेरी आज्ञा के कारण तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा ॥

अनादिसिद्धः संसारः कर्तृकर्मविवर्जितः ।
स्वयं प्रादुर्भवत्येव स्वयं नश्यति वै ततः ॥३१॥

यह संसार अनादि है, इसका न कोई कर्ता है, और न ही कोई कर्तव्य है, स्वयमेव बन जाता है, और आप ही नष्ट हो जाता है ॥

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।
इहैव स्वर्ग-नरकौ सुखदुःखात्मकौ मतौ ॥३२॥

न कोई स्वर्ग है, न कोई नरक और न ही मोक्ष है । सुन्दर स्त्री का भोग सुख ही स्वर्ग है । उसके न मिलने का दुःख ही नरक है और शरीर-त्याग ही मोक्ष है ॥

अहिंसा परमो धर्मः पापमन्यस्य पीडनम् ।
भीतेभ्यश्चाभयं देयं व्याधितेभ्यस्तथौषधम् ॥३३।

अहिंसा परम धर्म है, अन्य को दुःख देना पाप है । भयभीत को अभय तथा पीड़ित को औषध देनी चाहिए ॥

देया विद्यार्थिने विद्या देयमन्नं क्षुधातुरे ।
दग्ध्वा वह्नौ तिलाज्यादि मूर्खैः स्वर्गोऽभिलष्यते ॥३४॥

विद्यार्थी को विद्या एवं भूखे को अन्न देना चाहिए। मूर्ख अग्नि में तिल एवं घी जलाकर स्वर्ग की कामना करते हैं ॥

मुखबाहूरुपज्जातं चातुर्वर्ण्यं यदीरितम्।
कल्पनेयं कृता मूढैर्न घटेत विचारतः ॥३५॥

मुख, बाहु आदि से चातुर्वर्ण्य की सृष्टि की कल्पना मूर्ख लोगों की है जो विचार करने पर ठीक नहीं उतरती है ॥

विष्णुनोक्तं मतं ज्ञात्वा अर्हन् नाम्ना यतीश्वरः।
त्रिपुरे त्रिपुराध्यक्षपार्श्वेऽगच्छत्तदिच्छया ॥३६॥

विष्णु के कथन को सुन कर अर्हन् नामक यतीश्वर त्रिपुर में उसके अधीश्वर के पास गये ॥

विष्णूक्तनास्तिकमतैः संमोह्य त्रिपुराधिपम्।
सर्वथा नास्तिकं चक्रे सर्वैः पौरजनैः सह ॥३७॥

श्री विष्णु-प्रोक्त नास्तिक मतों से त्रिपुराधिप को मोहित करके उसको सब पुरवासी जनों के साथ कट्टर नास्तिक बना दिया ॥

स्त्रीधर्मान्खण्डयामास यज्ञधर्मान् व्रतादिकान्।
नृणां जितेन्द्रियत्वं स शिवपूजां विशेषतः ॥३८॥

उसने लोगों के स्त्रीधर्म, यज्ञधर्म, व्रतचर्या तथा इन्द्रियनिग्रह आदि को नष्ट कर दिया। उन्होंने शिवपूजा का विशेष रूप से खण्डन किया ॥

किं बहूक्तेन यतिना मायिना त्रिपुरेश्वरे।
तेन तेने महत्पापं नारीषु च नरेषु च ॥३९॥

अधिक क्या कहें। मायावी यति ने त्रिपुर में जाकर नर-नारियों में पापवृत्ति को बहुत अधिक बढ़ाया ॥

या श्रीः तैः तपसा प्राप्ता पितामहवरात्पुरा ।
सा त्यक्त्वा त्रिपुरं याता नास्तिक्यस्य प्रभावतः ॥४०॥

तपस्या द्वारा ब्रह्मा से जो ऐश्वर्य उन्होंने प्राप्त किया था, उनके नास्तिक हो जाने के कारण उसने उनका परित्याग कर दिया ॥

त्रिपुरे च दुराचारे दैत्यैस्त्यक्ते शिवार्चने ।
स्त्रीधर्मे सर्वथा नष्टे पुंसां धर्मेऽखिले तथा ॥४१॥
कृतार्थः श्रीहरिः सर्वैः देवैः सह पिनाकिने ।
कैलासे गमनं कृत्वा सर्वमेतत् न्यवेदयत् ॥४२॥

दुराचारपूर्ण त्रिपुर में स्त्रीधर्म एवं पुरुषधर्म सर्वथा नष्ट हो गया है। दैत्यों ने शिवपूजा का परित्याग कर दिया। इससे कृतार्थ होकर सब देवताओं के साथ विष्णु ने कैलास जाकर शिव को सब कुछ बता दिया ॥

मायया मोहिताः तेऽद्य सपौराः त्रिपुरासुराः ।
सर्वे भाग्यवशाज्जाता बौद्धागमसमाश्रिताः ॥४३॥

हे देव, भाग्यवश त्रिपुर में रहने वाले असुर माया से मोहित होकर बौद्ध बन गये हैं ॥

शरणं वयमापन्ना महेशानाद्य ते प्रभो ।
तेषां नाशाय सर्वेषां शीघ्रं गच्छ मदिच्छया ॥४४॥

हे प्रभो, हम आपकी शरण आये हैं। आप इन सबको नष्ट करने के लिए शीघ्र ही प्रयत्न कीजिये ॥

सद्वैनां प्रार्थनां श्रुत्वा विबुधानां महेश्वरः ।
पुरत्रयविनाशाय कृत्तिवासाः ततोऽभवत् ॥४५॥

देवताओं की प्रार्थना सुन कर शिव तीनों को नष्ट करने के लिए कृत्तिवासा बने ॥

उवाच सोऽद्य हे विष्णो रथश्चात्रससारथिः ।
शीघ्रमानीयतामेकः कार्मुकश्चशरान्वितः ॥४६॥

फिर उन्होंने विष्णु से शीघ्र ही सारथि युक्त एक रथ तथा एक धनुष लाने को कहा ॥

तदंगीकृत्य हरिणा कथितं विश्वकर्मणे ।
तेन तादृक् रथः कृत्वा शंकराय समर्पितः ॥४७॥

शिव की यह बात सुन कर विष्णु ने विश्वकर्मा से कहा जिसने वैसा रथ तैयार करके शिव को प्रदान किया ॥

तस्मिन् देवमये दिव्ये रथे चारुह्य शंकरः ।
विष्णुना विधिना चैव सहितः त्रिपुरेह्यगात् ॥४८॥

उस देवमय दिव्य रथ में बैठकर शंकर विष्णु एवं ब्रह्मा के साथ त्रिपुर गये ॥

अभिजिन्नाम्नि लग्ने तु शम्भुना बाणवह्निना ।
तारकाक्षः स निर्दग्धो भ्रातृभ्यां सहितोबली ॥४९॥

शंकर ने अभिजित् नामक लग्न में अपने बाण की अग्नि से भाइयों सहित बलवान् तारकाक्ष को नष्ट कर दिया ॥

जाते शिवस्य विजये त्रिजगत्प्रसिद्धैः
सिद्धैरकारि नभसः कुसुमौघवृष्टिः ।
गन्धर्वकिन्नरनराप्सरसः शिवस्य
चक्रुः प्रसन्नमनसो यशसोभिगानम् ॥५०॥

शिव के विजय होने पर सिद्धों ने पुष्प-वर्षा की और गन्धर्वादि ने यश का गान किया ॥

दैत्याश्च शतशोऽन्येपि दग्धा धर्मव्यतिक्रमात् ।
धर्मे नष्टेऽखिलं नष्टं भवतीति श्रुतेर्मतम् ॥५१॥

सैकड़ों अन्य दैत्य भी धर्म का उल्लंघन करने से नष्ट हो गये, क्योंकि श्रुति का मत है कि धर्म के नष्ट हो जाने पर सभी कुछ नष्ट हो जाता है ॥

पुराणि त्रीणि दग्धानि अभूवन् भस्मसात्क्षणात् ।
विनामयेन दैत्येन विना च विश्वकर्मणा ॥५२॥

मय नामक दैत्य एवं विश्वकर्मा को छोड़कर तीनों पुर क्षण भर में जल कर भस्म हो गये ॥

पूजयन्ति स्म ये दैत्याः शिवं भक्त्या तथाशिवाम् ।
गणाधिपत्यं तं प्रापुः द्वयोः पूजामहत्त्वतः ॥५३॥

जो दैत्य भक्तिपूर्वक शिव एवं पार्वती की पूजा करते थे वे उस पूजा के प्रभाव से गण भाव को प्राप्त हो गये ॥

एतस्मिन्नेव समये मुण्ड्यागत्य न्यवेदयत् ।
किं करोमिक्व गच्छामि मामाज्ञापय भोः प्रभो ॥५४॥

इसी बीच मुण्डी ने आकर कहा कि हे प्रभो, अब मैं कहाँ जाऊं, और क्या करूं, आप मुझे यह बताएँ ॥

कोटि कल्पानि नरके ममवासो भविष्यति ।
दैत्यानां शिवभक्तानां छलाद् भक्तिर्मयाहृता ॥५५॥

छल से शिवभक्त दैत्यों की भक्ति-भावना को नष्ट करने के कारण मुझे कोटि कल्प नरक वास करना पड़ेगा ॥

विष्णुर्ब्रह्मा च रुद्रश्च तमूचुर्दीनदण्डिनम् ।
खलानां मोहनायैतत् कृत ते नैवदूषणम् ॥५६॥

तब उस दीन दण्डी से विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव ने कहा, तात ! तुम डरो नहीं, तुमने जो कुछ किया है वह खल दैत्यों के मोहनार्थ किया है ॥

आगते च कलौ त्वं वै स्वमतं स्थापयिष्यसि।
मरुस्थलं त्वया सेव्यं यावत्कलिरुदेष्यति ॥५७॥

आगामी कलिकाल में तुम अपने मत की स्थापना करोगे। तब तक तुम मरुस्थल में वास करो ॥

ततः स भगवान् शम्भुः सर्वेषां प्रभुरीश्वरः।
ससुतः सहितः पत्न्या सगणोऽन्तर्दधे क्षणात् ॥५८॥

तब भगवान शंकर पुत्रगण एवं पत्नी के साथ अन्तर्धान हो गये ॥

स्वस्वस्थानमयुः सुराः ततो हरिर्धाता।
इन्द्रकुबेरयमार्कशशिज्वलनपाशिवाताः ॥५९॥

तब समस्त देवता, विष्णु, ब्रह्मा तथा इन्द्र कुबेर आदि सभी अपने-अपने स्थान को गये ॥

सप्तमोऽयं गतः सर्गोऽनुत्तमो गुणवत्तया।
चतुर्दश प्रबन्धानां भ्रातुश्चैतस्य काव्यस्य ॥६०॥

चौदह ग्रन्थों के भ्राता इस काव्य में उत्तम गुणों से युक्त सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
त्रिपुरदाहवर्णनात्मकः
सप्तमः सर्गः ॥

अथ शिवद्वाराऽन्धकवधवर्णनात्मकः

अष्टमः सर्गः

—०—०—

कृते हिरण्याक्षवधे हरिणा क्रोडरूपिणा ।
तद्भ्राता स्वर्णकशिपुः परितः समतप्यत ॥१॥

शूकर रूपधारी हरि द्वारा हिरण्याक्ष का वध किये जाने पर उसका कनिष्ठ भ्राता हिरण्यकशिपु बहुत दुखित हुआ ॥

बहुवर्षं तपस्तप्त्वा विधेर्भक्तदयानिधेः ।
स्वेच्छापूर्वं वरान् वव्रे जरामरणवर्जितान् ॥२॥

हिरण्यकशिपु ने सैकड़ों वर्ष घोर तपस्या करके अपने भक्तों पर कृपा रखने वाले ब्रह्मा जी से जरामरण रहित अभीष्ट वर मांगे ॥

स चाह भो विधे मृत्योर्न भयं मे भवेत् कुतः ।
शस्त्रैरस्त्रैर्देवदैत्यैः मर्त्यैः किंपुनरन्यतः ॥३॥

उसने कहा कि हे ब्रह्मन् ! मुझे किसी शस्त्र से, अस्त्र से, देवता से, मानव से, किसी से भी मृत्यु का भय न हो, अन्यों का तो कहना ही क्या ॥

पाताले भूतले नैव रात्रौ न दिवसे तथा ।
नोर्ध्वतो नाप्यधस्तः स्यान्मम मृत्युः पितामह ॥४॥

न मेरी मृत्यु पाताल में हो, न पृथ्वी पर हो, न रात्रि में हो, न दिन में हो, न ऊपर हो, न नीचे हो ॥

तस्यैतद् वचनं श्रुत्वा हसित्वा प्राहपद्मभूः ।
हिरण्यकशिपो भक्त एवमेव भविष्यति ॥५॥

उसका यह कथन सुनकर ब्रह्मा ने हँस कर कहा कि ऐसा ही होगा ॥

राज्याभिषिक्तमात्रः सन् ईर्ष्यापात्रः सुरान्प्रति ।
देवानां कदनं चक्रे प्रजानां च स दुर्मतिः ॥६॥

देवताओं के प्रति ईर्ष्या रखने वाले हिरण्यकशिपु ने राज्याभिषेक होते ही देवताओं तथा प्रजा को दुखित करना शुरू कर दिया ॥

विनाश्य सकलान् धर्मान् जित्वा च सकलान् सुरान् ।
त्रैलोक्य दुःखदानाय पूर्णं यत्नं चकार सः ॥७॥

उसने समस्त धर्मों को नष्ट करके तथा समस्त देवताओं को जीत कर तीनों लोकों को दुःख देने का पूर्ण प्रयत्न किया ॥

किमुक्तेनात्र बहुना विष्णुभक्तं निजंसुतम् ।
नानाविधानि कष्टानि प्रह्लादं प्रतिदत्तवान् ॥८॥

अधिक क्या कहें, उसने विष्णु के भक्त अपने पुत्र प्रह्लाद को भी अनेक प्रकार के कष्ट दिये ॥

समुद्रसलिले पातं पर्वताच्चैव पातनम् ।
हिंसनं हिंस्रजन्तोर्हि कारयामास तस्य सः ॥९॥

हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र भक्त प्रह्लाद को समुद्र जल में फिकवा दिया, पर्वत के शिखर से गिरवा दिया, सिंहादि हिंसक जन्तुओं से मरवाने का यत्न किया ॥

स्ववक्षसि गृहीत्वा तं भक्तं प्रह्लादबालकम् ।
होलिकाग्नौ प्रविष्टाभूत् सादग्धा न च सोऽर्भकः ॥१०॥

भक्त बालक प्रह्लाद को अपने से लिपटा कर होलिका ने अग्नि में प्रवेश किया, जिससे वह तो जल गई किन्तु बालक प्रह्लाद ज्यों का त्यों बच गया ॥

अनुकूले जगन्नाथे हन्तुमीष्टे कथं पुमान् ।
प्रतिकूले जगन्नाथे मशकोहन्ति मानवान् ॥११॥

ईश्वर के अनुकूल होने पर पुरुष कथमपि नहीं मार सकता, ईश्वर के प्रतिकूल होने पर मच्छर भी मनुष्य को मार सकता है ॥

प्रह्लादमेवमाहस्म ज्वलत्स्तम्भे निवध्यतम् ।
स च दुष्टो मतिभ्रष्टो हिरण्यकशिपुस्तदा ॥१२॥

दुष्ट हिरण्यकशिपु ने भक्त प्रह्लाद को जलते हुए अग्नि स्तम्भ में बँधवा कर कहा ॥

द्रक्ष्याम्यत्र रक्षयित्री कतमा देवता भवेत् ।
भवानत्र ज्वलत्स्तम्भे भविता भस्मसात् क्षणात् ॥१३॥

देखता हूं कौनसा देवता तेरी रक्षा करता है । क्षणमात्र में ही तेरा भगवान् इस जलते हुए स्तम्भ से जल जायेगा ॥

सामोदः भक्तप्रह्लाद उवाच पितरं प्रति ।
पश्य मे तात गात्रे त्वं वह्नि सलिल शीतलम् ॥१४॥

प्रह्लाद ने प्रसन्न होकर अपने पिता से कहा, हे तात ! देखो, मेरे शरीर के प्रति अग्नि जल के समान शीतल हो गई है ॥

इदानीं परमक्रुद्धः खड्गमादाय दानवः ।
हन्तुमिच्छति तं भक्तं श्रीनृसिंहः प्रकट्यभूत् ॥१५॥

इससे अति क्रुद्ध होकर हिरण्यकशिपु ने खड्ग से प्रह्लाद को मारना चाहा, किन्तु उसी समय भगवान् नृसिंह प्रकट हो गये ॥

नखैर्विदारयामास दनुजेश्वरमीश्वरः ।
तं दुष्टं भ्रष्टचरितं हिरण्यकशिपुं हरिः ॥१६॥

श्रीहरि ने उस दुष्ट एवं भ्रष्ट चरित देवद्रोही हिरण्यकशिपु को अपने नखों से फाड़ डाला ॥

कृत्वा युद्धं तस्य सैन्यैः जित्वा च सकलान्प्रभुः ।
इन्द्रादीन् सुखयामास प्रजाश्चैव प्रजायुताः ॥१७॥

महाप्रभु नृसिंह ने उसकी समस्त सेना को मार कर इन्द्रादि देवताओं को और सपुत्र पौत्रादि प्रजा को सुखी किया ॥

भगवानाह तं भक्तं वरं वरय सुव्रत ।
सर्वं दास्यामि ते तात यस्ते मनसि वर्तते ॥१८॥

भगवान् ने कहा, हे सुव्रत प्रह्लाद ! तुम कोई वर माँगो, तुम्हारी जो भी इच्छा होगी, मैं उसे पूरी करूंगा ॥

उवाच भक्तप्रह्लादः तुष्टोऽसि यदि मां प्रति ।
प्रतिकूलस्य ते नाथ मत्पितुर्दानवप्रभोः ॥१९॥
अपराधसहस्राणि करुणावरुणालय ।
क्षमांकृत्वोपकण्ठे तं वैकुण्ठे सुनिवासय ॥२०॥

प्रह्लाद ने कहा, नाथ ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे दानवराज पिता के सहस्र अपराधों को क्षमा करके वैकुण्ठ में अपने पास स्थान प्रदान करें ।'

तथास्तु भगवानुक्त्वा क्षणादन्तर्दधे हरिः ।
सर्वेषां भवतात् पुंसां प्रह्लाद सदृशः सुतः ॥२१॥

तथास्तु कहकर भगवान् क्षणभर में ही अन्तर्धान हो गये । सभी मनुष्यों के घर में प्रह्लाद सदृश पुत्र हों ॥

ईश्वरस्यातिभक्तस्य शक्तस्य लोकरक्षणे ।
तस्य सर्वाः प्रजा आसन् निजा इव प्रजा यथा ।।२२।।

वह ईश्वर का बहुत अधिक भक्त था तथा त्रिलोकी की रक्षा करने में समर्थ था । उसकी सारी प्रजा अपनी सन्तति के समान थी ।।

केऽपि तस्य विरुद्धा न प्रसिद्धा अपि भूमिपाः ।
सतः सर्वैर्मिलित्वैव प्रह्लादो राज्यमावकृत ।।२३।।

प्रसिद्ध राजा भी उसके विरुद्ध नहीं थे, अतः उन सबने मिल कर प्रह्लाद को राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया ।।

नाधयो व्याधयोऽभूवन् तस्मिन् राज्यं प्रशासति ।
नैवस्तेनो जनपदे न कदर्यश्च कश्चन ।।२४।।

उसके शासनकाल में प्रजा आधिव्याधि से मुक्त थी । न कोई चोर था और न ही कोई कृपण व्यक्ति था ।।

मृत्योः पूर्वं हिरण्याक्षः पुत्राभावेन दुःखितः ।
शंकरस्य प्रसादेन पुत्रं प्राप्याभवत्सुखी ।।२५।।

मृत्यु से पूर्व पुत्राभाव से दुःखित हिरण्याक्ष को शंकर की कृपा से पुत्र की प्राप्ति हुई ।।

अन्धत्वमभवत्तस्य ततोऽन्धक इति श्रुतः ।
अतएव पितू राज्ये प्रजया नोररीकृतः ।।२६।।

अन्धा होने के कारण वह अन्धक कहलाया । इसीलिए प्रजा ने उसको राजा के रूप में स्वीकार नहीं किया ।।

बहुवर्षं तपस्तप्त्वा हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः ।
सुनेत्रः सुबलो जातः पद्मजस्य तपस्यया ।।२७।।

उसने ब्रह्मा की अनेक वर्षों तक तपस्या की, जिससे वह वलवान् और नेत्रयुक्त हो गया ॥

पद्मयोनिं स चाहस्म नो मे मृत्युः कुतश्चन ।
दुर्जनैः यैः हृतं राज्यं ते वै भृत्याः भवन्तु नः ॥२८॥

उसने ब्रह्मा से कहा कि मेरी मृत्यु किसी के भी द्वारा न हो तथा जिन दुष्ट लोगों ने मेरे राज्य को ले लिया है, वे मेरे भृत्य हो जायें ॥

ब्रह्मोवाच भवेत्सर्वं मृत्युस्तु भविता तव ।
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥२९॥

ब्रह्मा ने कहा कि और सव कुछ हो जायेगा, किन्तु मृत्यु तो तुम्हारी अवश्य होगी, क्योंकि जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होती है और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म अवश्य होता हैं ॥

राज्यं गृहीत्वा प्रह्लादात् बलात्सोऽन्धकदानवः ।
इन्द्रादिभ्यश्च त्रैलोक्यं बुभुजे भुजयोर्बलात् ॥३०॥

अन्धक दानव ने प्रह्लाद से बलपूर्वक उसका राज्य एवं इन्द्रादि से तीनों लोकों को लेकर अपने वाहुबल से शासन किया ॥

एकदा स महावीरः इन्द्रोपेन्द्रादिभिः सह ।
चकार समरं घोरं बहुसैन्यसमन्वितः ॥३१॥

एक वार उस महावीर ने एक बड़ी सेना लेकर इन्द्र, विष्णु आदि देवताओं के साथ भयंकर युद्ध किया ॥

शस्त्रास्त्रैः संयुत्तानां च दीप्तानां क्रोधवह्निना ।
सुरासुराणां ते सेने युयुधाते परस्परम् ॥३२॥

देवों और दानवों की सेनाओं ने क्रुद्ध होकर परस्पर युद्ध किया ॥

तयोरणेन सकलं रुण्डमुण्डमभूत् जगत् ।
भूमौ ते पतिता वीराः दृश्यन्तेस्म भयंकराः ॥३३॥

उन दोनों सेनाओं ने घोर युद्ध किया, अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से वीर जमीन पर गिर पड़े और जगत् उनके रुण्ड-मुण्ड से व्याप्त-सा हो गया ॥

केषांचिद् बाहवः छिन्नाभिन्नग्रीवास्तथापरे ।
केचिन्मथितगात्रांशाः केचिर्निभिन्न मानसाः ॥३४॥

किन्हीं की भुजा कट गई और किन्हीं की ग्रीवा किन्हीं का सारा शरीर ही कुचल गया और कुछ को किसी प्रकार का ज्ञान ही न रहा ॥

बहुलानि कबन्धानि नृत्यमानानि तद्रणे ।
उद्धृतास्त्राणि गात्राणि दृश्यन्तेस्म समन्ततः ॥३५॥

उस रणभूमि में अनेक कबन्ध नृत्य कर रहे थे तथा चारों ओर गात्रों में से अस्त्र निकाले जा रहे थे ॥

त्यक्त्वाच भोजनं पानं उभयोः सेनयोरभूत् ।
अभूतपूर्वं तद्युद्धं तोमरैर्मुद्गरैस्तथा ॥३६॥

भोजनादि को छोड़कर उन दोनों सेनाओं का तोमरों एवं मुद्गरों से अभूतपूर्व युद्ध हुआ ॥

दुष्टो गदां गृहीत्वा स सार्धं नीत्वा गिलासुरम् ।
उष्ट्रैः खरैर्वीरवरैः सहितः संगरं ययौ ॥३७॥

दुष्ट अन्धक गदा हाथ में लेकर और अपने साथ गिल नामक असुर को लिए हुए ऊंटगर्दभयुक्त वीरों की सेना सहित युद्ध में आ पहुँचा ॥

कृत्वायुगान्त प्रतिमं युद्धं स च गिलोऽसुरः ।
ब्रह्मविष्णवर्क चन्द्रादीन्निगीर्णा नकरोन्मुखे ॥३८॥

दुष्ट गिलासुर ने युगान्तसदृश युद्ध करके ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और चन्द्रमा आदि को मुख में निगल लिया ॥

वीर एत्याह भोः शंभो विष्णुर्जिष्णुः सुरद्रुहाम् ।
निगीर्णो गिलदैत्येन चन्द्रार्कौमघवातथा ॥३९॥

वीरभद्र शंकर के पास आकर बोले, देव ! दुष्ट गिलासुर ने विष्णु, सूर्य, चन्द्र और इन्द्र को खा लिया है ॥

किमद्य करणीयं वै कथ्यतां भोः जगत्प्रभो ।
मृतांश्च असुरानेष उज्जीवयति भार्गवः ॥४०॥

तथा युद्ध में मारे गये असुरों को संजीवनी द्वारा शुक्राचार्य जीवित कर रहे हैं, ऐसी दशा में अब क्या करना चाहिये ॥

वहुपश्चात्तु निष्क्रान्तौ पद्माकान्तश्चपद्मजः ।
भगवानाह भो वीर शुक्रं वध्वा समानय ॥४१॥

वहुत पीछे विष्णु और ब्रह्मा निकल आए। शिव वोले, वीरभद्र शुक्राचार्य को वांध कर यहाँ ले आओ ॥

निगलिष्यामि तं दुष्टं ततो भीतिर्गमिष्यति ।
एवं कृते तु वीरेण सर्वे दैत्याः पलायिताः ॥४२॥

उस दुष्ट को मैं निगल जाऊँगा। सारी भीति नष्ट हो जायेगी। शुक्र को बाँध कर ले आने पर सारे दैत्य युद्ध छोड़कर भाग गये ॥

वीरभद्रेण वीरेण अन्धकोऽपि पराजितः ।
शिवमाराधयामास षडक्षरमनुं जपन् ॥४३॥

महावीर वीरभद्र ने युद्ध में अन्धकासुर को भी हरा दिया। तब उसने 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र से शिव को प्रसन्न किया ॥

शिव आह तमन्धाख्यं वरं ब्रूह्यसुरोत्तम ।
प्रसन्नोस्मि जपात् अस्मात् गाणपत्यं ददामिते ॥४४॥

शिव ने कहा, हे अन्धक ! तुम वर मांगो । मैं प्रसन्न होकर तुम्हें अपने गणों का अधिपति बनाता हूँ ॥

शिवप्रसादात्स स्मृत्वा पूर्वजन्मादि चात्मनः ।
ननाम पितरौ स्वीयौ पार्वतीपरमेश्वरौ ॥४५॥

शिव की कृपा से अन्धकासुर ने अपना पूर्व जन्मादि जान कर अपने माता-पिता पार्वती-शंकर को प्रणाम किया और अपराध की क्षमा मांगी ॥

शुक्रो बहुदिनं कुक्षौ शिवस्य परितोभ्रमन् ।
नमः शिवाय जापेन निष्क्रान्तः शिवशुक्रतः ॥४६॥

शुक्राचार्य बहुत दिन तक शिव की कुक्षि में भ्रमण करते रहे । पीछे 'नमः शिवाय' मन्त्र जप कर शिव के वीर्य द्वारा बाहर आ गये, तभी से शुक्र नाम से प्रख्यात हुए ॥

यत्पूजनीय कमनीय पदारविन्द,
प्रस्यन्दमानमकरन्दजुषां नराणाम् ।
किं कार्यमार्य करणीयमसाध्यमास्ते,
नो साध्यते खलु यदत्र परत्र देव ॥४७॥

हे देव ! तुम्हारे पूजनीय कमनीय पदारविन्द से प्रस्यन्दमान मकरन्द का पान करने वाले मनुष्यों का कौनसा कार्य ऐसा है जो न हो सके ॥

इति स्तुत्वा शिवं शुक्रो गत्वा च तदनुज्ञया ।
दैत्यसेनां विवेशाशु मेघमालां सुधांशुवत् ॥४८॥

शुक्राचार्य इस प्रकार स्तुति करके आज्ञा पाकर दैत्य सेना में चले गये ॥

देवाश्च सर्वे भगवच्छिवस्य
गुणान्प्रशस्याखिलविश्वमान्यान् ।
यथाययुस्ते प्रययुस्तथैव
हर्षप्रकर्षेण प्रफुल्लवक्त्राः ॥४९॥

सब देवता भगवान् के गुण गाते हुए प्रफुल्लित होकर अपने-अपने स्थान में चले गये ॥

अष्टमो गतवान्सर्गो निसर्गोत्तमरीतियुक् ।
चतुर्दश प्रबन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ॥५०॥

चौदह प्रबन्धों के भ्राता इस काव्य में आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहीकाव्ये
शिवद्वाराऽन्धकवधवर्णनात्मकः
अष्टमः सर्गः ॥

अथ शिवभक्तवाणवर्णनात्मकः

नवमः सर्गः

—०—०—

ब्रह्मसूनुर्मरीचिर्यो मुनिवर्योऽभवत्पुरा ।
मानसः सर्वपुत्रेषु ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च कीर्तितः ॥१॥

ब्रह्मा के मानस पुत्रों में मरीचि नाम से विख्यात मुनि सबसे बड़े एवं श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥

तस्य पुत्रः सुचरित्रः कश्यपो नाम विश्रुतः ।
सृष्टि वृद्धिकरोऽत्यन्तं पितुर्भक्तिपरोऽभवत् ॥२॥

पिता की भक्ति एवं श्रेष्ठ आचरण करने वाले कश्यप उनके पुत्र हुए, जिन्होंने सृष्टि की अत्यन्त वृद्धि की ॥

त्रयोदशमिता दक्षसुताः तस्याभवन् स्त्रियः ।
तासु ज्येष्ठादितिर्नाम दैत्याः तत्तनया मताः ॥३॥

दक्ष की तेरह पुत्रियाँ उनकी पत्नी थीं । उनमें दिति सबसे बड़ी थी । दैत्य उसीके पुत्र हैं ॥

दितेरास्तां महाशूरौ द्वौ पुत्रौ लोकविश्रुतौ ।
ज्येष्ठो हिरण्यनेत्रोऽभूत् हिरण्यकशिपुः परः ॥४॥

दिति के दो पुत्र बड़े बलवान् एवं लोकविख्यात थे । बड़े का नाम हिरण्यनेत्र तथा दूसरे का नाम हिरण्यकशिपु था ॥

चतुः संख्यान्विता जाताः हिरण्यकशिपोः सुताः ।
ह्लादानुह्लादसंह्लादप्रह्लाद इति विश्रुताः ॥५॥

हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे—ह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद तथा प्रह्लाद ॥

हिरण्यादि द्वयोर्भ्रात्रोश्चरितं वर्णितं पुरा।
प्रह्लादस्य सुतः श्रीमान् विरोचन इति स्मृतः ॥६॥

हिरण्य नेत्र एवं हिरण्यकशिपु दोनों भाइयों के चरित्र का वर्णन पीछे किया जा चुका है। प्रह्लाद के पुत्र का नाम विरोचन था ॥

दैत्यानां कुलजातोऽपि विष्णुभक्तोऽभवच्च सः।
पितुर्गुणाः पुत्र गुणानारभन्ते इति श्रुतिः ॥७॥

दैत्य-कुल में उत्पन्न होने पर भी वह विष्णु का भक्त था। ठीक ही है कि पिता के गुण ही पुत्र में आते हैं ॥

याचमानाय इन्द्राय विप्ररूपाय सोऽददात्।
स्वं शिरः किंबहूक्तेन प्रह्लादस्य सुतः क्षणात् ॥८॥

अधिक क्या कहें प्रह्लाद के पुत्र ने ब्राह्मण रूपधारी याचक इन्द्र को अपना मस्तक तुरन्त ही प्रदान कर दिया ॥

वलिर्बभूव तत्पुत्रो दानदातृवरोऽसुरः।
येन वामनरूपाय वैकुण्ठाय ददे क्षितिः ॥९॥

उसका पुत्र दानियों में श्रेष्ठ वलि हुआ जिसने वामन रूपधारी विष्णु को पृथ्वी प्रदान कर दी थी ॥

शिवभक्तः तस्य पुत्रः श्रीमान् बाण इति श्रुतः।
स्ववंरे शोणितपुरे प्राज्यं राज्यं चकार यः ॥१०॥

उसका पुत्र शिवभक्त बाण था जिसने शोणितपुर में बहुत समय तक राज्य किया ॥

मान्यो वदान्योऽभूत्सोऽपि किंकराः तस्य चामराः ।
ताण्डवेन स्व नृत्येन आशुतोषमतोषयत् ॥११॥

वह भी बहुत दानी था और देवता उसके सेवक थे। उसने अपने ताण्डव नृत्य से शंकर को प्रसन्न किया ॥

तस्माद् नृत्यात् सुप्रसन्नो भूत्वा श्रीवृषभध्वजः ।
वरेण छन्दयामास तं भक्तं बाणनामकम् ॥१२॥

उसके नृत्य से प्रसन्न होकर शिव ने उससे वर माँगने को कहा ॥

ततो बाणासुरः प्राह यदि तुष्टोऽसि भोः प्रभो ।
मत्पुरे वसतान्नित्यं रक्षताच्च सदैव माम् ॥१३॥

बाणासुर ने कहा कि भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो आप नित्य ही मेरी पुरी में निवास करें तथा सदैव मेरी रक्षा करें ॥

तथेत्युक्त्वैकदा शम्भुः तत्पुरे पश्यतां सताम् ।
क्रीडा विहारं कृतवान् पार्वत्या सह कौतुकी ॥१४॥

शिव ने कहा, ऐसा ही होगा। एक बार उस नगरी में विनोदी शिव ने श्रेष्ठ लोगों के देखते हुए पार्वती के साथ क्रीड़ा की ॥

स पौरैः धिक्कृतोऽयासीत् कैलाशं सशिवः शिवः ।
किंचित्काले समागत्य आह बाणो महेश्वरम् ॥१५॥

नगरवासियों द्वारा धिक्कृत किये जाने पर शिव पार्वती के साथ कैलाश चले गये। कुछ समय पश्चात् बाणासुर ने महेश्वर के पास जाकर कहा ॥

दोः सहस्रं त्वया दत्तं भारं मन्ये तदप्यहम् ।
त्रैलोक्ये प्रतियोद्धा मे विद्यते त्वदृते नहि ॥१६॥

आपने मुझे सहस्र भुजायें दी हैं, उन्हें मैं भार ही मानता हूँ क्योंकि त्रिलोकी में आपके सिवा कोई ऐसा योद्धा नहीं है जो मेरे साथ युद्ध कर सके ॥

कण्डूत्या बहुभिर्दोर्भिर्हतवान् दिग्गजानहम् ।
मया जिताः क्वचिद् याता इन्द्रवातादयः सुराः ॥१७॥

अनेक भुजाओं में कण्डूति के कारण मैंने दिग्गजों को मारा है। मेरे द्वारा पराजित होकर इन्द्रादि देवता भी कहीं भाग गये हैं ॥

युद्धस्यावसरं ब्रूहि केन साकं भविष्यति ।
तच्छ्रुत्वा कुपितः शम्भुर्जगाद त्वं प्रमादयुक् ॥१८॥

अब बताइये किसके साथ युद्ध होगा। यह सुनकर कुपित शिव ने कहा कि तुम्हें बड़ा प्रमाद (अभिमान) हो गया है ॥

गर्वस्य चास्य शमनं भविता मद्विधान्नरात् ।
तादृशं पुरुषं वाञ्छन् स्वस्य धाम जगाम सः ॥१९॥

तुम्हारे इस गर्व का शमन मेरे जैसें व्यक्ति द्वारा ही होगा। और ऐसे पुरुष की कामना करता हुआ वह अपने स्थान को चला गया ॥

एकदा वाणतनया सौन्दर्यविनयान्विता ।
पुरुषं कामसदृशं स्वप्नमध्ये व्यलोकयत् ॥२०॥

एक बार वाण की पुत्री ने स्वप्न में कामदेव के समान सुन्दर एक व्यक्ति को देखा ॥

प्रातरुत्थाय नालोक्य तं जनं विललाप सा ।
ऊषा स्वीय सखी पार्श्वे रहस्यन्तःपुरे वरे ॥२१॥

प्रातःकाल उठकर उसके दिखाई न देने पर ऊषा अन्तःपुर में अपनी सखी के पास जाकर एकान्त में रोने लगी ॥

चित्रलेखा तु तामाह कथं विलपसि प्रिये।
प्रियेण रहिता यद्वत् प्रिया रोदिति हे सखि ॥२२॥

चित्रलेखा ने उससे कहा, हे सखी ! जैसे कोई अपने प्रिय के विरह में रोता है, इस प्रकार तुम क्यों रो रही हो ॥

ऊषाह स्वप्नकेऽपश्यं पुरुषं कामसदृशम्।
तमद्य नैव पश्यामि रोदनस्यास्ति कारणम् ॥२३॥

हे सखि ! मैंने स्वप्न में एक काम के समान सुन्दर पुरुष को देखा था, किन्तु अब उसे नहीं देख पा रही हूँ, इसीलिए रो रही हूँ ॥

दृष्टस्त्वयाद्य यः स्वप्ने पुरुषः कामसदृशः।
अहं प्रिये समानेष्ये तं चाज्ञातं कथं पुनः ॥२४॥

तुमने काम के समान सुन्दर जिस पुरुष को स्वप्न में देखा है उस अज्ञात व्यक्ति को मैं किस प्रकार ला सकती हूँ ॥

बाणकन्या ततो जाता मरणोत्सुकतायुता।
रक्षिता बहुयत्नेन सख्या सा चित्रलेखया ॥२५॥

तब बाणकन्या मरणोत्सुक हो गई, तथा उसकी सखी चित्रलेखा ने बड़े प्रयत्न से उसकी रक्षा की ॥

स्वप्ने गौरी व्रतात्तुष्टा तामूषामाह सुव्रते।
अनिरुद्धः प्रियस्तेऽसौ वर्तते द्वारिकापुरे ॥२६॥

उसके व्रत से सन्तुष्ट होकर गौरी ने स्वप्न में उससे कहा कि तुम्हारा प्रिय अनिरुद्ध द्वारिकापुरी में विद्यमान है ॥

प्रातरुत्थाय सा प्राह चित्रलेखां सखीं प्रति।
देवान् नरान् चित्रयत्वं येन ज्ञास्यामि तं द्रुतम् ॥२७॥

प्रातःकाल उठकर उसने अपनी सखी चित्रलेखा से कहा कि तुम देवताओं एवं मर्त्यजीवों के चित्र बनाओ ताकि मैं उसको शीघ्रता से पहचान लूं ॥

देवान् गन्धर्वनागान्सा नरान् यूनश्च वृष्णिषु ।
प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च चित्रलेखा व्यलीलिखत् ॥२८॥

चित्रलेखा ने देवताओं, गन्धर्वों, नागों तथा वृष्णिकुल के युवा व्यक्तियों, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध के चित्र बनाये ॥

अनिरुद्धं विलिखितं मनोनीतं विलोक्य सा ।
ऊषा प्राह अयं चौरो येन चित्तं हृतं मम ॥२९॥

अपने प्रिय अनिरुद्ध के चित्र को देखकर ऊषा ने कहा कि यही वह चोर है जिसने मेरे चित्त को हर लिया है ॥

चित्रलेखेऽस्य प्राप्त्यै त्वं उपायं कुरु सत्वरम् ।
येनोपायेन तं कान्तं लभेयं प्राणतोऽधिकम् ॥३०॥

हे चित्रलेखे, शीघ्र ही तुम कोई ऐसा उपाय करो जिससे मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय, कान्त की प्राप्ति हो जाये ॥

ऊषामेषा समाश्वास्य चित्रलेखा महाद्भुता ।
ज्ञात्वा कृष्णस्य पौत्रं तं द्वारिकां गन्तुमुद्यता ॥३१॥

'अनिरुद्ध कृष्ण का पौत्र है' यह जानकर चित्रलेखा ने ऊषा को आश्वासन दिया तथा द्वारका जाने के लिए उद्यत हो गई ॥

तया तु दिव्ययोगिन्या सहसा च विहायसा ।
द्वारिकान्तःपुरोद्याने गत्वा दृष्टोऽनिरुद्धकः ॥३२॥

उसने दिव्य-योगिनी की सहायता से क्षणमात्र में ही आकाश द्वारा जाकर द्वारिका अन्तःपुर के उद्यान में अनिरुद्ध को बैठे देखा ॥

सर्वाङ्गसुन्दरः श्रीमान् श्यामलश्चातिकोमलः ।
खट्वायां स समारूढो व्यूढोरस्कः शुचिस्मितः ॥३३॥

कमल के समान नेत्र एवं चौड़े कन्धों वाला, सर्वाङ्गसुन्दर अनिरुद्ध खाट पर बैठा हुआ था ॥

सा खट्वायां समासीनमन्धकारपटेन तम् ।
आच्छाद्य मूर्ध्नि तां खट्वामादाय प्रययौ ततः ॥३४॥

चित्रलेखा ने खाट पर बैठे हुए अनिरुद्ध के सिर पर कपड़ा डाला और उसे खाट सहित उठाकर ले गई ॥

आयाता शोणितपुरे यत्रोषा वर्तते स्म सा ।
कामतः अकरोद् भावान् विविधान्मत्तमानसा ॥३५॥

चित्रलेखा अनिरुद्ध को लेकर शोणितपुर में आ गई, जहां कामार्त ऊषा उन्मत्त-सी बन कर अनेक प्रकार की चेष्टाए कर रही थी ॥

ऊषा चागतमालोक्य कुमारं स्मरसुन्दरम् ।
भृशमालिक्य तत्याज कामजन्यशुचं क्षणात् ॥३६॥

ऊषा ने काम के समान सुन्दर उस कुमार को आया देखकर बार-बार आलिङ्गन किया और कामजन्य दुःख को त्याग दिया ॥

ताम्बूलपटवासादिसंविधानविदग्धया ।
तया सख्या तु सहिता सानिरुद्धमतोषयत् ॥३७॥

उसने सखी सहित अनिरुद्ध को ताम्बूल पटवासादि द्वारा सत्कार करके अतीव प्रसन्न किया ॥

अनिरुद्धः स तैर्दृष्टो द्वाररक्षिजनैरपि ।
युवा दिवाकर इव कुमारश्चातिसुन्दरः ॥३८॥

सूर्य के समान सुन्दर अनिरुद्ध को द्वारपालों ने भी देखा ॥

द्वारपालास्तदा गत्वा बाणमाहुश्च भोः प्रभो ।
कन्यां तव बलाद् कश्चित् स्वयंग्राहमजीग्रहत् ॥३९॥

तत्काल ही द्वारपाल वाण के पास गये और कहा, हे प्रभो, सूर्य-तुल्य तेजस्वी किसी बालक ने आपकी कन्या को बलपूर्वक दूषित कर दिया है ॥

दानवेन्द्र महावाहो यद् युक्तं तत् कुरु द्रुतम् ।
निवेदनं हि युक्तं नो न स्वयं कारिणो वयम् ॥४०॥

हे दानवेन्द्र, अब जो आप उचित समझें वह शीघ्र ही करें, क्योंकि हम तो निवेदनमात्र ही कर सकते हैं, स्वतः कुछ भी नहीं कर सकते ॥

निशम्य वचनं तेषां दानवेन्द्रो महाबलः ।
विस्मयं कृतवान् बाणः सुतायाः श्रुतदूषणः ॥४१॥

उनके वचनों को सुनकर तथा अपनी पुत्री के दूषण को जान कर बाण को वहुत आश्चर्य हुआ ॥

अहोऽयं निर्भयो मूढो मृत्युना प्रेरितः कुतः ।
आयातो येन दुष्टेन दुहिता दूषिता मम ॥४२॥

अहो, मृत्यु से प्रेरित हुआ यह मूढ कहाँ से आ गया, जिसने कि मेरी पुत्री को भ्रष्ट कर दिया ॥

दुराचारमिमं बध्वा वीराः कारागृहे निजे ।
निवेश्य रक्षध्वं तावत् यावत्कोप्येति नास्य ना ॥४३॥

वीरो, इस दुराचारी को बांधकर मेरे कारागार में डाल दो और तब तक इसकी रक्षा करते रहो, जब तक इसका कोई व्यक्ति इसे ढूंढता हुआ न आ जाये ॥

पुनश्च शतवीराणां सैन्यं दैन्यविवर्जितम् ।
युद्धं कर्तुं कुमारेण तेनादिष्टं दुरात्मना ॥४४॥

फिर दुष्ट बाणासुर ने अनिरुद्ध के साथ युद्ध करने के लिए सौ वीरों की सेना को लड़ने की आज्ञा दी ॥

शत्रुसैन्यं ततो दृष्ट्वा गर्जन् प्रद्युम्ननन्दनः ।
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात् सर्वं हत्वा समाययौ ॥४५॥

शत्रु-सेना को आया देखकर अनिरुद्ध गर्जना करता हुआ अन्तःपुर से बाहर निकला और सबको मार कर पुनः वहीं पर आ गया ॥

हतेषु शतवीरेषु क्रोधं बाणासुरोऽकरोत् ।
अनिरुद्धं महाक्रुद्धं द्वन्द्वयुद्धे समाह्वयत् ॥४६॥

अनेक वीरो के मारे जाने से बाणासुर को बहुत क्रोध आया और उसने द्वन्द्व युद्ध के लिए अनिरुद्ध को ललकारा ॥

द्वन्द्वयुद्धेऽपि सर्वान् सोऽसुरान् जित्वा महाबलान् ।
बाणं जघान निजया दिव्यशक्त्याऽनिरुद्धकः ॥४७॥

सभी महाबली असुरों को जीत कर अनिरुद्ध ने द्वन्द्व-युद्ध में बाण पर दिव्यशक्ति का प्रहार किया ॥

तया शक्त्या हतो बाणः तत्रैवान्तरधीयत ।
छद्मना नागपाशैस्तं बध्नाति स्म स्मरात्मजम् ॥४८॥

उस शक्ति से आहत होकर बाण वहीं अन्तर्धान हो गया और छल-पूर्वक अनिरुद्ध को नागपाश से बांध दिया ॥

अजिज्ञपत् सूतपुत्रं बाणो वीरत्वदूषणः ।
सूतपुत्र शिरश्छिन्धि अस्य दुष्टस्य सत्वरम् ॥४९॥

बाण ने सूतपुत्र से कहा कि इस दुष्ट का शीघ्र ही सिर काट दो ॥

छित्वा सर्वाणि गात्राणि क्षिप्यन्तां सर्वतोदिशम् ।
रक्तानि चास्य मांसानि भुज्यंतामसुरैरपि ॥५०॥

इसके अंगों को काट कर सब दिशाओं में फेंक दो तथा इसके रक्त एवं मांस को सब राक्षस खा लें ॥

बाणस्येदं वचः श्रुत्वा धर्मबुद्धिः कुभाण्डकः ।
आह नेदं समुचित नीतियुक्तं च भोः प्रभो ॥५१॥

बाण के ये वचन सुनकर धर्मबुद्धि कुमाण्डक ने कहा कि ऐसा करना उचित नहीं है ॥

कुमाण्डवचनं मत्वा बाण आहानिरुद्धकम् ।
कोऽसि कस्यासि रे दुष्ट सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥५२॥

कुमाण्ड के वचनों को मान कर बाण ने अनिरुद्ध से कहा कि रे दुष्ट, तू कौन है और किसका पुत्र है—मुझे सच-सच बता ॥

जितोऽस्मीति वचो ब्रूहि यदि जीवितुमिच्छसि ।
बाणस्य वचनं श्रुत्वाऽनिरुद्धः क्रुद्ध आह सः ॥५३॥

यदि जीवित रहना चाहता है तो कह कि मैं पराजित हो गया हूँ—बाण के वचन सुनकर अनिरुद्ध ने क्रुद्ध होकर कहा ॥

रे रे दैत्य क्रुध्यसि त्वं शत्रुधर्मं न बुध्यसे ।
दीनत्वं च छलत्वं च वीरस्य मरणाधिकम् ॥५४॥

हे दैत्य, तुम क्रोध करते हो, किन्तु शत्रुधर्म के अनुसार युद्ध नहीं करते। एक वीर के लिए दीनता और छल मरने से भी अधिक कष्टप्रद हैं ॥

बध्नासि स्म छलान्मां त्वं वीरं मन्योऽसि दैत्य रे ।
मन्ये वीरं तदाहं त्वां न छलं कृतवान् यदि ॥५५॥

अपने को वीर मानने वाले, तुमने छल से मुझे बांधा था। मैं तो तुम्हें वीर तब मानता, यदि तुमने रण में छल न किया होता ॥

तदैवाह नभोवाणी बाण नो क्रोद्धुमर्हसि ।
बलिपुत्रोऽसि सुमते, शत्रुधर्मं विचारय ॥५६॥

तभी आकाशवाणी हुई कि हे वाण, तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। तुम बलि के पुत्र हो, तुम्हें शत्रुधर्म का विचार करना चाहिए ॥

अनिरुद्धस्मृतः शम्भुः शरपञ्जरमच्छिनत् ।
मुष्टिभिर्भस्मसाच्चक्रे नागांश्च निजमायया ॥५७॥

अनिरुद्ध के स्मरण करने पर शिव ने शरपञ्जर को तोड़ दिया और अपनी माया से नागों को नष्ट कर दिया ॥

आगत्य तस्माच्छरपञ्जराद् बहिः
वीरोऽनिरुद्धः शिवमंत्रजापात् ।
प्रविश्य चान्तःपुरकं तदेव
चक्रे, विहारं प्रिययोषया सः ॥५८॥

शिवमंत्र के जाप के प्रभाव से शरपञ्जर से बाहर आकर अनिरुद्ध ने अन्तःपुर में प्रवेश करके ऊषा के साथ विहार किया ॥

नवमोऽयं गतः सर्गो निसर्गोत्तमवस्तुयुक् ।
चतुर्दश प्रबन्धानां भ्रातुश्चैतस्य काव्यस्य ॥५९॥

चौदह प्रबन्धों के भ्राता इस काव्य में निसर्गोत्तमवस्तु से युक्त नवम सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
ऊषानिरुद्धसमागमवर्णनात्मको
नवमः सर्गः ॥

अथ शिवद्वारावाणस्य गाणपत्यलाभात्मक:

दशम: सर्ग:

—०—०—

हृतेऽनिरुद्धे भगवान् शुशोच सकुटुम्बक: ।
क: पुमान् योऽपहृतवान् अनिरुद्धं गृहेस्थितम् ॥१॥

अनिरुद्ध का अपहरण हो जाने पर कुटुम्ब सहित भगवान् कृष्ण को बहुत चिन्ता हुई कि ऐसा कौनसा व्यक्ति है जिसने घर में स्थित अनिरुद्ध का अपहरण कर लिया ॥

एतस्मिन्नेव समये नारद: समुपेत्य स: ।
ननाम शुद्धमनसा वचसा च परं हरिम् ॥२॥

इसी बीच नारद ने आकर शुद्ध मन एवं वाणी से हरि को नमस्कार किया ॥

प्रणम्य भगवानाह नारदं सर्वतोविदम् ।
मुने त्वयानिरुद्धोऽपि क्वचिद् दृष्टोऽथवा श्रुत: ॥३॥

भगवान् ने प्रणाम करके नारद से कहा कि हे मुने, क्या आपने अनिरुद्ध को कहीं देखा है अथवा उसके विषय में कुछ सुना है ॥

निपीय नारदस्तद् वै श्रीकृष्णोक्तं वचोऽमृतम् ।
निबद्धं शोणितपुरेऽनिरुद्धं तं न्यवेदयत् ॥४॥

श्रीकृष्ण के वचनों को सुनकर नारद ने 'अनिरुद्ध शोणितपुर में बँधा है'—यह उन्हें बताया ॥

बभूवुर्दुःखिताः सर्वे वृष्णयः कृष्णदैवताः ।
जग्मुर्युद्धाय तत्रैव यत्रासीदनिरुद्धकः ॥५॥

यह सुनकर समस्त वृष्णि जिनके इष्टदेव श्रीकृष्ण थे अति दुःखित हुए और जहां अनिरुद्ध था युद्ध के लिए वहीं चल दिये ॥

कृष्णश्च बलदेवश्च प्रद्युम्नः साम्ब एव च ।
युयुधानश्च नन्दश्च सारणश्च महाबलः ॥६॥
द्वादशाक्षौहिणीभिस्तु समेताः वृष्णयश्च ते ।
रुरुधुः शोणितपुरं सत्वरं सात्वतर्षभाः ॥७॥

कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न, साम्ब, युयुधान, नन्द, महाबली सारण आदि वृष्णियों ने बारह अक्षौहिणी सेना लेकर शोणितपुर पर चढ़ाई कर दी ॥

भज्यमानं पुरोद्यानं श्रुत्वा बाणो विनिर्ययौ ।
योद्धुं तैर्वृष्णिभिः साकं मुकुन्दपरिरक्षितैः ॥८॥

अपने पुरोद्यान को छिन्न-भिन्न किया जाता सुनकर बाण श्रीकृष्ण से रक्षित वृष्णियों के साथ युद्ध करने के लिए बाहर निकल आया ॥

बाणार्थमागतो रुद्रः सपुत्रः प्रमथैर्वृतः ।
बभूव तुमुलं युद्धं कृष्णस्य शंकरस्य च ॥९॥

बाण की सहायता के लिए प्रमथ गणों एवं अपने पुत्र के साथ शंकर आ गये तथा कृष्ण एवं शंकर का परस्पर घोर युद्ध हुआ ॥

प्रद्युम्नगुहयोश्चाथ कूष्माण्डबलदेवयोः ।
बाणपुत्रेण साम्बस्य बाणेन सह सात्यकेः ॥१०॥
नन्दिना गरुड़स्याथ परस्याथ परेण च ।
शंकरानुचरान् कृष्णो द्रावयासास सर्वतः ॥११॥

प्रद्युम्न का गुह के साथ, कूष्माण्ड का वलदेव के साथ, बाणपुत्र का साम्ब के साथ, वाण का सात्यकि के साथ, नन्दी का गरुड़ के साथ तथा अन्य लोगों का अन्य लोगों के साथ घोर युद्ध हुआ, और कृष्ण ने सब ओर से शंकर के अनुचरों को भगा दिया ॥

विशीर्यमाणं स्वगणं वीक्ष्य क्रोधेन सत्वरम् ।
कृष्णसेनासु चिक्षेप शिवः शैवं महाज्वरम् ॥१२॥
विद्रुतं स्वीयसैन्यं च दृष्ट्वा शीतज्वरं परम् ।
तत्याज शिवसैन्येषु ज्वरगर्वहरं हरिः ॥१३॥
माहेश्वरज्वराक्रान्तो विष्णोः शीतज्वरः शिवम् ।
तुष्टाव तेन तुष्टः सन्नाहरत् स्वं ज्वरं हरः ॥१४॥
श्रीकृष्ण शिवयोर्युद्धं द्वयोस्तु परमेशयोः ।
बभूव बहुकालान्तं नैवकोऽपि पराजितः ॥१५॥
एतद् दृष्ट्वामरा आसन् द्वयोःस्तुतिपरास्तदा ।
ततो द्वयोरभूत्सन्धिः शिवस्य केशवस्य च ॥१६॥

शार्ङ्ग से निकले हुए तीक्ष्ण वाणों एवं तोमरों से अपने गणों को भागते हुए देखकर शिव ने क्रोध से कृष्ण की सेना पर शैव महाज्वर छोड़ा। इससे अपनी सेना को भागते हुए देखकर कृष्ण ने ज्वर के गर्व को हरने वाला शीतज्वर शिव की सेना पर छोड़ दिया। शिव के ज्वर से आक्रान्त विष्णु के शीतज्वर ने शिव की स्तुति की और इससे सन्तुष्ट होकर शिव ने अपने ज्वर को वापिस ले लिया। कृष्ण और शिव का यह युद्ध बहुत समय तक होता रहा, किन्तु कोई भी पराजित नहीं हुआ। यह देखकर देवगण दोनों की स्तुति करने लगे। फिर दोनों की आपस में सन्धि हो गई ॥

स्कन्दः प्रद्युम्नविशिखैः ताडितः कुपितश्च तम् ।
शक्त्या जघान निजया प्रद्युम्नं कृष्णनन्दनम् ॥१७॥

प्रद्युम्न के वाणों से आहत होकर कुपित स्कन्द ने प्रद्यम्न पर शक्ति से प्रहार किया ॥

स्कन्दशक्ति हतौ वीरौ प्रद्युम्नबलदेवकौ ।
रणादपक्राम्यतः स्म मरणाद्रहितौ तदा ॥१८॥

स्कन्द की शक्ति से आहत होकर प्रद्युम्न और वलदेव युद्ध से भाग गये ॥

शिवाज्ञया स भगवान् बाणबाहून्बहून् मुदा ।
सुदर्शनेन चक्रेण चिच्छेद परमक्रुधा ॥१९॥

शिव की आज्ञा से कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से वाण की अनेकों भुजाओं को काट डाला ॥

चत्वारो बाहवस्तस्य बाणस्य च शिवाज्ञया ।
न छिन्ना न शिरः छिन्नं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२०॥

विष्णु ने शिव की आज्ञा से वाण के चार बाहुओं एव शिर को नहीं काटा ॥

शिव आह मया विष्णो यदाज्ञप्तं त्वया कृतम् ।
इदानीं च निवंतस्व रणादस्य च मारणात् ॥२१॥

शिव ने कहा कि हे विष्णो, जो कुछ मैंने कहा तुमने वह कर दिया। अब तुम इस युद्ध से निवृत्त हो जाओ ॥

त्वमेव दैत्यसंहर्ता भर्ता च जगतोऽस्य वै ।
वरोस्मै च मया दत्तो न ते मृत्युर्भविष्यति ॥२२॥

आप ही दैत्य का वध करने वाले हैं तथा आप ही इस जगत् का पालन करने वाले हैं। मैंने इसको यह वर दिया है कि इसकी मृत्यु नहीं होगी ॥

अयं च गर्वितो दैत्यो युद्धं देहीति मेऽवदत् ।
तदाहमशप चैनं बाहुच्छेत्ता तवाधम ॥२३॥
आगमिष्यति शीघ्रं वै मदन्यो मादृशः पुमान् ।
इत्युक्त्वा चोभयोर्मैत्रीं बाणश्रीकृष्णयोस्तदा ॥२४॥
कारयित्वा महेशानः कैलासालयमागमत् ।
प्रद्युम्नबलदेवाभ्यां कृष्णो बाणगृहं ययौ ॥२५॥

इस अभिमानी दैत्य ने मुझसे युद्ध करने के लिए कहा । तब मैंने इसको शाप दिया कि हे अधम, तेरी भुजाओं को नष्ट करने वाला मुझ जैसा कोई अन्य व्यक्ति शीघ्र ही आयेगा । यह कहकर उन्होंने बाण एवं श्रीकृष्ण की मैत्री करवा दी और शिव अपने स्थान कैलाश चले गये तथा कृष्ण प्रद्युम्न एवं बलदेव के साथ बाण के यहां चले गये ॥

प्रेम्णा प्रद्युम्नपुत्रं च स्वपुत्र्या सहितं च तम् ।
आलये आनयामास स्वकीये बाणदानवः ॥२६॥

अपनी पुत्री सहित प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्ध को बाण प्रेमपूर्वक अपने घर ले आया ॥

अथ विज्ञापयांचक्रे बाणो नाम महासुरः ।
सस्मितो विस्मितश्चैव श्रीकृष्णं जगदीश्वरम् ॥२७॥

अब आश्चर्यचकित बाण ने हँसते हुए श्रीकृष्ण से कहा ॥

त्वन्मायामोहिताः कृष्ण पुत्रदारगृहादिषु ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ताः दुःखसागरे ॥२८॥

हे विष्णो, आपकी माया से पुत्रकलत्र एवं घर में आसक्त होकर लोग दुःख के सागर में डूबते उतरते रहते हैं ॥

महाभाग्यादिदं प्राप्य नरत्वमजितेन्द्रियः ।
भजते यो न ते नाम स भवेद्धि कुधीर्नरः ॥२९॥

बहुत प्रारब्ध से मनुष्ययोनि को प्राप्त करके भी जो व्यक्ति इन्द्रियों के वश में होकर आपका स्मरण नहीं करते हैं वे अधम हैं ॥

रुद्राज्ञया भवान्प्राप्तो मम दोर्दण्डखण्डने ।
जृम्भिते जृम्भणास्त्रेण सपुत्रे सगणे मयि ॥३०॥

हे हरे, भगवान् रुद्र की आज्ञा से आप मेरी भुजाओं को काटने के लिए आये हो । जृम्भणास्त्र से आपने मुझे और मेरे पुत्रादि को हराया ॥

अहं विनिर्ययौ कर्तुं युद्धं त्वत्तो महाप्रभो ।
तत्क्षमस्व ममाज्ञानं न भेदस्ते शिवस्य च ॥३१॥

आपसे युद्ध करने के लिए जो मैं आया यह मेरा अज्ञान था, आप इसको क्षमा कर दें । आपमें तथा शिव में कोई भेद नहीं है ॥

मया दत्तां निजसुतां तव पौत्राय हे हरे ।
अनिरुद्धकुमाराय गृहाणानुगृहाण माम् ॥३२॥

हे हरे, आपके पौत्र अनिरुद्ध के लिए प्रदत्त मेरी पुत्री को आप स्वीकार करके मुझ पर अनुग्रह करें ॥

इत्थं तत्प्रार्थितः कृष्णः प्रसन्नः संस्तदात्मजाम् ।
जग्राह रत्नसंघातं यौतुकं चातुलं तथा ॥३३॥

इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर कृष्ण ने प्रसन्न होकर उसकी पुत्री एवं रत्नपूर्ण अतुल दहेज को स्वीकार कर लिया ॥

महोत्सवो महानासीद् बाणस्य नगरे ततः ।
स्त्रीगणो नृगणः सर्वो महानन्दमविन्दत ॥३४॥

तब बाण के नगर में बहुत उत्सव हुआ तथा स्त्रियों एवं पुरुषों को बहुत आनन्द हुआ ॥

प्रसन्नात्स्वपितुह्यूषा चित्रलेखां सखीमपि।
अग्रहीद्दिव्यवस्त्राणि नानालंकरणानि च ॥३५॥

ऊषा ने प्रसन्न पिता से अपनी प्यारी चित्रलेखा सखी सहित अनेक दिव्य-वस्त्रों तथा भूषणों को ग्रहण किया ॥

प्रशशंस तयोर्योगं वरवध्वोः पुरीजनः।
चन्द्रचन्द्रिकयोः तुल्यं रतिमन्मथयोरिव ॥३६॥

पुरवासियों ने चन्द्र और चन्द्रिका तथा रति और कामदेव के समान वर-वधू के योग की बहुत प्रशंसा की ॥

शिवं प्रणम्य मनसा बाणं चामन्त्र्य प्रेमतः।
सहितः परिवारेण कृष्णः स्वपुरमागतः ॥३७॥

शिव को मन से प्रणाम करके तथा बाण से प्रेमपूर्वक बात करके कृष्ण परिवार सहित अपने घर लौट आये ॥

श्रीकृष्णे स्वपुरं याते परिवारसमन्विते।
दुःखमाप परं बाणः स्वाज्ञानस्मरणात्तदा ॥३८॥

परिवार सहित कृष्ण के चले जाने पर बाण को अपना आचरण स्मरण करके अति दुःख हुआ ॥

नन्द्युवाच सखे बाण यज्जातं जातमेव तत्।
पार्श्वे भगवतो गच्छ स त्वामनुग्रहीष्यति ॥३९॥

नन्दी ने कहा हे सखे बाण, जो हो गया सो हो गया। तुम भगवान् शिव के पास जाओ, वे तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे ॥

तच्छ्रुत्वा शिवपार्श्वेऽयं गत्वा चोद्विग्नमानसः।
स्तुत्या प्रसादयामास बाणो नृत्यैश्च शंकरम् ॥४०॥

यह सुनकर दुःखित बाण शिव के पास गया और स्तुति से तथा उनके समक्ष नृत्य करके उनको प्रसन्न किया ॥

शिव आह बलेः पुत्र तुष्टोऽहं नर्तनेन ते।
वरं वरय मद्भक्त शक्तोऽहं सर्वसाधने ॥४१॥

शिव ने कहा हे बलिपुत्र, मैं तुम्हारे नृत्य से प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर मांग लो, मैं सब कुछ करने में समर्थ हूँ ॥

बाणः प्राह यदि विभो तुष्टोऽसि मम नर्तनात्।
वरान् देहि प्रसन्नस्त्वमेतान्मे मनसि स्थितान् ॥४२॥

बाण ने कहा हे प्रभो, यदि आप मेरे नृत्य से प्रसन्न हैं तो आप मेरे इच्छित वरों को प्रदान करें ॥

बाहुयुद्धस्य चौद्धत्यं गाणपत्यं तथैव मे।
ऊषापुत्रस्य राज्यं तु नगरे शोणिताह्वये ॥४३॥
निर्वैरत्वं सुरगणैः विष्णुभक्तिस्त्वया सह।
न पुनर्दैत्यता मेस्यादसती चान्यजन्मसु ॥४४॥

बाहुयुद्ध में वीरता, गणपतित्वपद शोणित नगर में ऊषा के पुत्र का राज्य, देवताओं के साथ मैत्री तथा आपकी एवं विष्णु की भक्ति प्रदान करें एवं अन्य जन्मों में मैं कभी दैत्य न बनूं —ये वर आप मुझे प्रदान करें ॥

सतां च पुंसामसतां च पुंसां
कृतं न चिह्नं द्रुहिणेन किंचित्।
सुखेषु दुःखेषु परस्य चैते
हर्षप्रकर्षात्प्रकटीभवन्ति ॥४५॥

ब्रह्मा ने सज्जन एवं असज्जन लोगों की पहचान के लिए कोई विशेष चिह्न नहीं बनाये हैं किन्तु दूसरों के सुख-दुःख में हर्ष प्रकट करने से ये स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं ॥

सतामसंगादसतां च संगात्
भवन्ति सन्तोऽपि असन्त एव।
पिकोऽपि काकस्य कुलेन संगात्
काको भवत्येव प्रसिद्ध मेतत् ॥४६॥

सज्जनों की संगति न करने से एवं दुष्टों के संग से सज्जन भी दुष्ट हो जाते हैं। कोयल भी काक-कुल का संग करने से काक ही हो जाती है—ऐसा कहा जाता है ॥

स भक्त-वश्यो भगवांस्तमाह
ददामि सर्वं मनसेप्सितं ते।
गणेषु मुख्यो भवितासि मेत्व-
मुक्तवैव मन्तर्हितवान् महेशः ॥४७॥

भक्तवश्य भगवान् ने कहा कि जो कुछ तुमने मांगा है वह सब प्रदान करता हूँ। तुम मेरे गणों में मुख्य बनोगे। यह कह कर शिव अन्तर्धान हो गये ॥

गतोऽयं दशमः सर्गो निसर्गोदात्तगीर्युतः।
चतुर्दश प्रबन्धानां भ्रातुश्चैतस्य काव्यस्य ॥४८॥

चौदह प्रबन्धों के भ्राता इस काव्य में निसर्गत उदात्त-वाणी से युक्त दसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
शिवद्वारावाणस्य गाणपत्यलाभात्मकः
दशमः सर्गः ॥

अथ शिवद्वाराजलन्धरवधात्मकः

एकादशः सर्गः

—०—०—

अथैकदा शिवेनस्वं भालनेत्र समुद्‌ भवम्।
तेजः क्षिप्तं महाम्भोधौतच्चबालोऽभवत्क्षणात् ॥१॥

एक बार शिव ने अपने ललाट स्थित नेत्र से उत्पन्न तेज को समुद्र में फेंका, जिसने तत्काल ही एक बालक का रूप ले लिया ॥

गंगासागरयोः संगे स्थितः सन्स रुरोद वै।
सर्वे लोकाः तत् श्रवणात् सशोका अभवंस्तदा ॥२॥

वह बालक गंगा और सागर के संगमस्थल पर बैठ कर रोने लगा, जिसे सुनकर सभी लोक शोकाकुल हो गये ॥

इन्द्रादिभिः सुरैः सार्धं मागत्य परमेष्ठिना।
पृष्टोऽर्णवः तमाहस्म सिन्धुगंगोद्‌ भवो ह्यसौ ॥३॥

इन्द्रादि देवताओं के साथ आकर ब्रह्मा ने समुद्र से पूछा। तो उसने उत्तर दिया कि यह गंगा और समुद्र से उत्पन्न हुआ है ॥

रुदतस्तस्य बालस्य नेत्राभ्यां जलमापतत्।
ब्रह्मणा कथितं चास्याभिधानं स्याज्जलंधरः ॥४॥

रोते हुए उस बालक के नेत्रों से जल गिरा तो ब्रह्मा ने कहा कि इसका नाम जलंधर होगा ॥

सुराणामसुराणां स जेतास्याच्छंकरादृते।
पतिव्रतास्य भविता पत्नी सौभाग्यशालिनी ॥५॥

शंकर को छोड़ कर यह सभी सुरों एवं असुरों को जीतने वाला होगा, इसकी पत्नी पतिव्रता और सौभाग्यशालिनी होगी ॥

इत्युदीर्य स तं बालं शुक्रद्वाराभिषिच्य वै।
दैत्य राज्येऽब्धि मामन्त्र्य स्वकं धाम जगाम ह ॥६॥

यह कह कर उन्होंने शुक्र द्वारा उस बालक का अभिषेचन किया तथा जलंधर को दैत्य राज्य में नियुक्त करके अपने स्थान को चले गये ॥

कियत्काले गते सोऽब्धिः स्वबाले प्राप्तयौवने।
कालनेमिसुतां वृन्दां तद्भार्यार्थमयाचत ॥७॥

कुछ समय बीतने पर बालक के युवा होने पर समुद्र ने कालनेमि की पुत्री वृन्दा की उसकी भार्या के रूप में याचना की ॥

कालनेमिश्च तां याञ्चामंगीकृत्य महाम्बुधेः।
जलन्धराय वाराय स्वसुतां तामदान्मुदा ॥८॥

कालनेमि ने समुद्र की वह प्रार्थना स्वीकार करके जलन्धर को अपनी पुत्री प्रसन्नतापूर्वक दे दी ॥

अथैकदा स्वसभायामागताच्छुक्रतो गुरोः।
जलन्धरः पर्यपृच्छत् राहुमस्तक कृन्तनम् ॥९॥

एक बार अपनी सभा में आये हुए शुक्राचार्य से जलन्धर ने राहु-मस्तक को काटे जाने का वृत्तान्त पूछा ॥

शुक्र आह पुरा देवैरसुरैश्चाब्धि मन्थनम्।
कृतं तत्रामृतं प्राप्तं पपुरन्यायतः सुराः ॥१०॥

शुक्र ने कहा कि प्राचीन समय में देवताओं व असुरों ने मिल कर समुद्र का मन्थन किया। उससे प्राप्त अमृत को देवताओं ने अन्यायपूर्वक पी लिया ॥

पिवतश्चामृतं राहोः शिरः छिन्नं तु विष्णुना ।
सुदर्शनेन चक्रेण सुराणां पक्षपातिना ॥११॥

देवताओं का पक्षपात करते हुए विष्णु ने अमृत पान करने वाले राहु का सिर सुदर्शन चक्र से काट डाला ॥

श्रुत्वा जलन्धरो वीरो दूतं कृत्वाऽथ घस्मरम् ।
प्रेषयामास शक्रस्य देवराजस्य सन्निधौ ॥१२॥

यह सुनकर जलन्धर ने घस्मर को दूत बना कर देवराज इन्द्र के पास भेजा ॥

स गत्वाह संश्रृणुष्व समाचारं मम प्रभोः ।
जलन्धरः प्राह कस्मात्त्वयामे मथितः पिता ॥१३॥

उसने जाकर कहा कि मेरे स्वामी का सन्देश सुनो । उन्होंने कहा है कि आपने मेरे पिता का मन्थन किस लिए किया ॥

तस्याखिलानि रत्नानि मह्यं देयानि दैवतैः ।
सहागत्य क्षमायाञ्चा कर्तव्या चान्यथाभयम् ॥१४॥

देवताओं को सारे रत्न मुझे सौंप देने चाहियें तथा आकर क्षमा-याचना करनी चाहिए अन्यथा उनको खतरा हो जायेगा ॥

इन्द्र आह श्रणुत्वं वै स्वप्रभुं विनिवेदय ।
मद्भयात् पर्वताः त्रस्ताः त्वत्पित्रा कुक्षिसात्कृताः ॥१५॥

इन्द्र ने कहा—सुनो और अपने स्वामी से कह दो कि मेरे भय से त्रस्त पर्वतों को तुम्हारे पिता ने शरण दी ॥

ततश्च मथितस्वेप रत्नानि चाहृतानि मे ।
त्वद्भ्राता शंखकोप्येवं मद् भ्रात्रा हरिणा हतः ॥१६॥

इसीलिए उसका मन्थन किया गया और मैंने रत्नों का हरण किया। इसी प्रकार तुम्हारे भाई शंखासुर को मेरे भाई विष्णु ने मारा ॥

मत्पार्श्वे समयो नास्ति त्वमागच्छासुरैः सह।
त्यजन्ति मानिनः प्राणान् व्रतं नैकमयाचितम् ॥१७॥

मेरे पास समय नहीं है, असुरों के साथ तुम यहीं आ जाओ। मानी पुरुष प्राण तक दे सकते हैं परन्तु कभी भी याञ्चा नहीं करते ॥

उदयेऽपि रवीरक्तो रक्तोऽस्त रक्तोस्तमुपयाति च।
संपद्विपत्योर्धीराणां दृश्यते एकरूपता ॥१८॥

सूर्य उदय होते समय भी लाल होता है और अस्त होते समय भी लाल होता है। महान् व्यक्ति सुख और दुःख में एक रूप ही रहते हैं ॥

इन्द्रोक्त मखिलं श्रुत्वा गत्वा स प्रभवेऽवदत्।
जलन्धरोऽकरोत्क्रोधं तन्निशम्य महासुरः ॥१९॥

इन्द्र ने जो कुछ कहा उसे सुनकर दूत ने अपने स्वामी को जा सुनाया जिसे सुनकर जलन्धर को बहुत क्रोध आया ॥

सज्जीकृत्य स्वसैन्यानि निर्दैन्यानि जलन्धरः।
युद्धं कर्तुं सुरैः साकं निरगात्स्वपुरात्ततः ॥२०॥

जलन्धर ने अपनी सेना को तैयार किया और देवताओं के साथ युद्ध करने के लिए घर से निकल पड़ा ॥

गत्वामरावतीं दैत्यः पुरीमिन्द्राद्यधिष्ठिताम्।
नन्दनं च वनं दिव्यमावृत्य परितः स्थितः ॥२१॥

इन्द्रादि देवताओं की अमरावती पुरी में जाकर दिव्य नन्दन वन को चारों ओर से घेर कर स्थित हो गया ॥

घोरं बभूव समरं देवदानव-सेनयोः ।
सुशरै रतितीक्ष्णाग्रैः गदापरिघतोमरैः ॥२२॥

देव और दानवों की सेनाओं में मुसल, गदा, परिघ, तोमर आदि से घोर युद्ध हुआ ॥

तैः वीरैः सा कृता भूमी रुधिरेण परिप्लुता ।
गजाश्वानां पदातीनां पतितानां तदारणे ॥२३॥

उन वीरों ने भूमि को मारे गये हाथी, अश्व एवं पैदल सैनिकों के रक्त से भर दिया ॥

युद्धे तस्मिन्मृतान्दैत्यान् भार्गवः समजीवयत् ।
देवानथ मृतांश्चक्रे जीविता नङ्गिरा मुनिः ॥२४॥

उस युद्ध में मृत दैत्यों को शुक्राचार्य ने जीवित कर दिया तथा मृत देवताओं को अङ्गिरा मुनि ने जीवित कर दिया ॥

शुक्र आह शृणुत्वं वै जलन्धर वचो मम ।
अंगिरा जीवयत्येष द्रोणाद्रेरौषधैः सुरान् ॥२५॥

शुक्र ने कहा कि हे जलन्धर, यह अंगिरा द्रोणादि की औषधियों से देवताओं को जीवित कर देते हैं ॥

जयं वाञ्छसि चेत्तात द्रोणमब्धिजलेक्षिप ।
स्वभुजाभ्यां बलिष्ठाभ्यां चोत्पाट्य धरणीतलात् ॥२६॥

हे तात, यदि तुम विजय चाहते हो तो द्रोण पर्वत को अपनी भुजाओं से उखाड़ कर समुद्र के जल में डुबा दो ॥

श्रुत्वा शुक्रस्य वचनं गत्वा स्वभुजयोर्बलात् ।
द्रोणं चोत्पाट्य दनुजस्तूर्णमब्धिजलेऽक्षिपत् ॥२७॥

शुक्राचार्य के वचनों को सुनकर जलन्धर ने अपनी भुजाओं के बल से द्रोण पर्वत को उखाड़ कर समुद्र में फेंक दिया ॥

जलन्धर हृतं द्रोणं श्रुत्वा देवाः सवासवाः ।
विजयं च स्वधैर्यं च त्यक्त्वा चक्रुः पलायनम् ॥२८॥

जलन्धर ने द्रोण का हरण कर लिया, यह सुनकर इन्द्र सहित समस्त देवताओं ने विजय एवं धैर्य को छोड़कर रण से पलायन किया ॥

देवान् पलायितान् ज्ञात्वा सानन्दश्चाब्धि नन्दनः ।
ससेनः शंखनादेन प्रविवेशामरावतीम् ॥२९॥

देवताओं का पलायन सुनकर समुद्रपुत्र जलन्धर ने आनन्दपूर्वक सेना सहित शंखनाद के साथ अमरावती में प्रवेश किया ॥

कृताधिकारे सर्वत्र दैत्यराजे जलन्धरे ।
हिमाचल गुहां गत्वा न्यवसन्सर्वदेवताः ॥३०॥

दैत्यराज जलन्धर द्वारा सर्वत्र अधिकार कर लिए जाने पर देवता हिमालय की गुफा में जाकर रहने लगे ॥

सुरा यत्रगता भीताःसुवर्णाद्रिगुहा स्थले ।
निवेश्य स्वपदे दैत्यान् स्वयं तत्र गतो ह्ययम् ॥३१॥

देवता सुवर्णाद्रि की गुफा में चले गये हैं यह सुनकर अपने स्थान में दैत्यों को नियुक्त करके वह दुष्ट असुर स्वय वहां गया ॥

समायातं तमाश्रुत्य भयव्याकुल-मानसाः ।
सहसा प्रययुः सर्वे वैकुण्ठं ब्रह्मणा सह ॥३२॥

उसको आया जानकर भय से व्याकुल होकर सारे देवता ब्रह्मा के साथ वैकुण्ठ को चले गये ॥

प्रोचुस्ते मिलिताः सर्वे जगन्नाथ जगत्पते।
पाहि नः शरणं यातान् त्राहि दुष्टजलन्धरात् ॥३३॥

सबने मिलकर कहा, हे जगन्नाथ जगत्पते ! शरण में आये हुओं की रक्षा कीजिये और दुष्ट जलन्धर से हमको बचाइये ॥

सूर्याचन्द्रौ स्वाधिकारात् वह्निवायू तथैव च।
नागराज-धर्मराजौ वंचिताः सर्व एव हि ॥३४॥

सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, शेष एवं धर्मराज सभी अपने-अपने अधिकारों से वंचित हो गये हैं ॥

सुराणां वचनं श्रुत्वा करुणावरुणालयः।
विष्णुराहाद्य गच्छामि योद्धुं तेनासुरेण वै ॥३५॥

देवताओं के वचन सुनकर विष्णु ने कहा कि मैं आज उससे युद्ध करने के लिए आऊँगा ॥

गच्छन्तं तं समालोक्य रमा प्राह स्म सत्वरम्।
कथं मे भ्रातरं युद्धे हनिष्यसि जलन्धरम् ॥३६॥

युद्ध करने के लिए उनको जाते देखकर लक्ष्मी ने कहा कि आप मेरे भाई जलन्धर को कैसे युद्ध में मारेंगे ॥

विष्णु रूचे प्रस्थितोऽहं देव-प्रार्थनया प्रिये।
रुद्रांशत्वात् ब्रह्मवाक्यान्नेशेहन्तुं जलन्धरम् ॥३७॥

विष्णु ने कहा कि मैं देवताओं की प्रार्थना के कारण जा रहा हूँ। किन्तु रुद्र का अंश होने के कारण एवं ब्रह्मा के कथन के कारण मैं जलन्धर को मारने में समर्थ नहीं हूँ ॥

हरिर्जगाम तत्रासौ यत्रास्ते दैत्यराट् स वै।
जलन्धरोऽपि तं दृष्ट्वा क्रोधात् योद्धुं समभ्यगात् ॥३८॥

जहाँ दैत्यराज जलन्धर था, विष्णु वहां गये। जलन्धर भी उनको देखकर क्रोधपूर्वक युद्ध करने के लिए आया ॥

युद्धोद्यतां समालोक्य देवसेना मुपस्थिताम्।
दैत्यान् सोऽजिज्ञपत् सर्वान् महाबल पराक्रमान् ॥३९॥

युद्ध के लिए तत्पर देव-सेना को देखकर उसने समस्त पराक्रमी दैत्यों से कहा ॥

भो दैत्या देवतैर्यूयं घोरं कुरुत संगरम्।
कातरा अमरा येन पलायिष्यन्ति सत्वरम् ॥४०॥

हे दैत्यो, तुम देवताओं के साथ घोर युद्ध करो, जिससे भयभीत होकर देवता भाग जाएँ ॥

दैत्याः जलन्धराज्ञप्ताः सुराः शक्रपुरस्सराः।
नानास्त्रशस्त्राः समरे घोरं युयुधिरे तदा ॥४१॥

जलन्धर की आज्ञा पाकर दैत्यों ने और इन्द्र के नेतृत्व में देवताओं ने नाना प्रकार के शस्त्रों से घोर युद्ध किया ॥

दैत्यानामायुधैर्विद्धदेहा देवाः सवासवाः।
पलायनपराजातारणाद् भूरिव्रणान्विताः ॥४२॥

दैत्यों के आयुधों से आहत होकर इन्द्र सहित सभी देवता रण से भागने लगे ॥

एवम्भूतान् सुरान् दृष्ट्वा योद्धुमागतवान्हरिः।
सुदर्शनेन चक्रेण हतवान् कोटिशोऽसुरान् ॥४३॥

देवताओं की यह दशा देखकर विष्णु युद्ध करने के लिए आये और करोड़ों दैत्यों को सुदर्शन चक्र से मारा ॥

जलन्धरोऽसुरोप्येत्य चक्रे नादं भयंकरम् ।
कर्णास्तु येन सर्वेषां विदीर्णाः श्रवणात्ततः ॥४४॥

जलन्धर ने आकर भी भयंकर शब्द किया, जिसके सुनने से सबके कान विदीर्ण हो गए ॥

ततो जातं महत्युद्धं विष्णुदैत्येन्द्रयोरथ ।
आकाशं कुर्वतोः बाणैः तीक्ष्णैर्निरवकाशवत् ॥४५॥

तब विष्णु और जलन्धर में विकट युद्ध हुआ और आकाश में तीक्ष्ण बाणों का जाल-सा बिछ गया ॥

हरिणा दैत्यराजस्य ध्वजं छत्रं धनुः शरान् ।
छित्वाचैकेन बाणेन हृदये सोऽपि ताडितः ॥४६॥

विष्णु ने जलन्धर के ध्वज, छत्र, धनुष एवं बाणों को छिन्न करके हृदय में भी एक बाण से प्रहार किया ॥

ततो दैत्यः समुत्पत्य गरुड़ं मूर्ध्नि चाहनत् ।
हरिं जघान शूलेन स क्रूरः स्फुरिताधरः ॥४७॥

तब दैत्य ने उछल कर गरुड़ के मस्तक पर प्रहार किया और विष्णु पर भी शूल से प्रहार किया ॥

एवं प्रकुर्वतोर्युद्धं द्वयोरद्भुतवीरयोः ।
महान् कालो व्यतिक्रान्तः कोऽपि नैव पराजितः ॥४८॥

इस प्रकार दोनों वीरों को युद्ध करते हुए बहुत समय बीत गया, किन्तु कोई भी पराजित नहीं हुआ ॥

विष्णुराह महावीर प्रसन्नोऽस्मि तवाहवात् ।
न दृष्टः त्वत्समो वीरः त्रिषु लोकेषु कश्चन ॥४९॥

विष्णु ने कहा कि हे वीर, मैं तुम्हारे युद्ध से वहुत प्रसन्न हूँ। तीनों लोकों में मैंने तुम्हारे समान वीर नहीं देखा ।।

वरं वरय भो दैत्य प्रीतोऽस्मि ते पराक्रमात् ।
अदेयं चापि ते दास्ये संकोचश्च न कश्चन ।।५०।।

मैं तुम्हारे पराक्रम से प्रसन्न हूँ, अतः तुम कोई वर मांग लो। जो अदेय हैं वह भी तुम्हें मैं दूंगा, इसमें कोई सकोच न करो ।।

निशम्य वचनं विष्णोः स गिरंगिरतिस्म वै ।
यदि विष्णो प्रसन्नोऽसि मद्गेहे वस पद्मया ।।५१।।

विष्णु के ये वचन सुनकर जलन्धर ने कहा कि यदि आप प्रसन्न हैं तो आप मेरे घर में लक्ष्मी के साथ निवास करें ।।

स तथास्तु वचः प्रोच्य जलन्धरपुरेऽगमत् ।
रमयासहितस्तत्र उवास बहुवासरान् ।।५२।।

विष्णु तथास्तु कहकर जलन्धर के नगर में गये और बहुत समय तक वहां लक्ष्मी के साथ निवास किया ।।

श्रुत्वैकदा नारदर्षेः पार्वती मतिसुन्दरीम् ।
शिवस्य योगिनः पत्नीं प्रैषयत् दूतमाशु सः ।।५३।।

'शिव की पत्नी पार्वती बहुत सुन्दर हैं' ऐसा नारद के मुख से एक बार सुनकर जलन्धर ने शीघ्र ही एक दूत को भेजा ।।

दूतो गत्वाह भोः शम्भो, शृणु जालन्धरं वचः ।
भोक्ताहं सर्वरत्नानां स्त्रीरत्नं देहि मे शिव ।।५४।।

दूत ने जाकर कहा हे शिव, आप जलन्धर के वचन सुनें। उन्होंने कहा है कि मैं समस्त प्रकार के रत्नों का भोक्ता हूँ अतएव स्त्री-रत्न पार्वती को आप मुझे प्रदान कर दें ।।

यत्सौन्दर्यं महाम्भोधौ निमग्नः चतुराननः।
स्वधैर्यं त्यक्तवान् पूर्वं तयातुल्यास्ति काङ्गना ।।५५।।

जिसके सौन्दर्य सागर में निमग्न होकर ब्रह्मा ने अपने धैर्य को खो दिया, उसके समान और कौन स्त्री सुन्दर हो सकती है ।।

श्मशान-वासिनो नित्यमस्थिमालाधरस्य च।
दिगम्बरस्य ते भार्या शोभते न कथंचन ।।५६।।

श्मशान में रहने वाले, अस्थियों की माला पहनने वाले एवं तुम जैसे दिगम्बर को भार्या शोभा नहीं देती ।।

दूत आगत्य तत्रैव शिवसामर्थ्यमुक्तवान्।
तेन क्रुद्धः ससैन्यः सः कैलासे योद्धुमागमत् ।।५७।।

दूत ने वहां आकर शिव की सामर्थ्य का वर्णन किया, जिससे क्रुद्ध होकर वह सेना सहित कैलाश में युद्ध करने के लिए आ गया ।।

अथ कोलाहलं श्रुत्वा दैत्यसेनासमुद्भवम्।
अजिज्ञपन्महादेवः तेन योद्धुं गणान्स्वकान् ।।५८।।

दैत्यों के कोलाहल को सुनकर शिव ने अपने गणों को युद्ध करने की आज्ञा दी ।।

अभूदभूतपूर्वं तत् युद्धं प्रमथदैत्यजम्।
गणेश वीरभद्राद्या अपि प्रदुद्रुवूरणात् ।।५९।।

प्रमथों एवं दैत्यों का वह युद्ध अभूतपूर्व था, जिसमें गणेश एवं वीरभद्रादि भी रण से भागने लगे ।।

तच्छ्रुत्वा भगवान् रुद्रः क्रोधं कृत्वा जलन्धरम्।
अभ्यधावत वेगेन शूलमुद्यम्य सत्वरम् ।।६०।।

यह सुनकर भगवान् शिव क्रोधपूर्वक वेग से शूल उठाकर जलन्धर के प्रति दौड़े ॥

क्षणात्हयान् ध्वजं छत्रं धनुः चिच्छेद शूलतः ।
जलन्धरस्य दैत्यस्य भगवान् सर्वशक्तिमान् ॥६१॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् ने क्षणभर में शूल से जन्लधर के अश्व, ध्वज, छत्र एवं धनुष को काट दिया ॥

ततो जगाद दैत्येन्द्रो मां न जानासि शंकर ।
त्रैलोक्य जयिनं वीरं जेष्यामि त्वामपिद्रुतम् ॥६२॥

जलन्धर ने कहा, शंकर ! त्रैलोक्य को जीतने वाले मुझको तुम नहीं जानते हो, मैं तुम्हें भी शीघ्र ही जीत लूंगा ॥

तच्छ्रुत्वा दैत्यवचनं गर्वपूर्णं महाप्रभुः ।
अव्यर्थेन स्वशूलेन तच्छिरः तूर्णमच्छिनत् ॥६३॥

दैत्य के गर्वपूर्ण इन वचनों को सुनकर शिव ने अपने अमोघ शूल से उसका सिर काट दिया ॥

तत्तेजः खलु निर्गतं स्वतनुतो रुद्रस्य देहेऽविशत् ।
वृन्दादेह समुद्भवन्तु तदगात् गौरीशरीरेलयम् ॥६४॥

वह तेज उसके शरीर से निकल कर शिव के शरीर में प्रविष्ट हो गया । वृन्दा की देह का तेज पार्वती के शरीर में लीन हो गया ॥

चन्द्रोऽभूच्च सुशीतलो रविरभूत्पूर्णप्रतापोज्वलः ।
दैत्ये श्रील जलन्धरे विनिहते जातं प्रभातं नभः ॥६५॥

चन्द्रमा शीतल हो गया, रवि उज्ज्वल एवं तेजयुक्त हो गया तथा जलन्धर के मारे जाने पर आकाश स्वच्छ हो गया ॥

स्वल्पदीपमिवतिग्मपावनः
शुष्कवृक्षमिव वन्यवह्निकः ।
अन्धकारमिव भास्करोदयः
तद्‌बलं च निखिलं शिवोऽहनत् ॥६६॥

भगवान् शिव ने तीक्ष्ण वायु द्वारा छोटे दीवे की तरह, वनाग्नि से शुष्क वृक्ष की तरह, भास्करोदय से अन्धकार की तरह, जलन्धर की सेना को भी मार दिया ॥

एकादशो गतः सर्गो जलन्धर-वधात्मकः ।
चतुर्दश प्रबन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ॥६७॥

चौदह प्रबन्धों के भ्राता इस काव्य में जलन्धर वध का ग्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
शिवद्वारा जलन्धरवधवर्णनात्मकः
एकादशः सर्गः ॥

अथ शिवद्वाराशंखचूड़वधात्मकः

द्वादशः सर्गः

—०—०—

ब्रह्मपौत्रस्य पुत्रस्य मरीचेः कश्यपस्य च।
बह्वीषु धर्मपत्नीषु दनुरेका पतिव्रता ॥१॥

ब्रह्मा जी के पौत्र और मरीचि के पुत्र महर्षि कश्यप की बहुत-सी पत्नियों में एक पतिव्रता दनु पत्नी थी ॥

तस्याः पुत्रो विप्रचित्तिः तस्य पुत्रश्च दम्भकः।
पुत्रार्थं स तपश्चक्रे पुष्करे दुष्करं महत् ॥२॥

उसका पुत्र विप्रचित्ति था, विप्रचित्ति का पुत्र दम्भक था। उसने पुत्र की कामना से पुष्कर में कठोर तपस्या की ॥

तेन तुष्टो वरं ब्रूहीत्युवाच भगवान् हरिः।
स चाह देहि मे पुत्रं त्वद्भक्तं चाजितं सुरैः ॥३॥

उससे प्रसन्न होकर भगवान् ने वर माँगने के लिए कहा। उसने कहा कि मुझे ऐसा पुत्र प्रदान करें जो आपका भक्त हो और देवताओं के लिए अजेय हो ॥

तथास्त्विति वचः प्रोच्य हरिरन्तर्दधे क्षणात्।
कालेनाल्पेन तत्पत्नी समसूत सुतं वरम् ॥४॥
सुदामनामको गोपः श्रीकृष्णस्य वयस्यकः।
यः पूर्वं राधया शप्तः सोऽभूदद्य च तत्सुतः ॥५॥

तथास्तु कहकर भगवान् क्षणभर में अन्तर्हित हो गये। थोड़े ही समय के पश्चात् उसकी पत्नी ने एक श्रेष्ठ पुत्र को जन्म दिया। श्रीकृष्ण का सुदामा नामक वयस्य गोप जिसे कि राधा ने पहले शाप दिया था, वही अब दानव के रूप में शंखचूड़ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

ववृधे स पितुर्गेहे लालनात्पालनात्तथा।
नाम चक्रे पिताचास्य शंखचूडेतिविश्रुतम् ॥६॥

अपने पिता के घर में लालन-पालन से वह बढ़ने लगा। तथा पिता ने उसका नाम शंखचूड़ रखा ॥

अथ पंचदशाब्दोपि जैगीषव्योपदेशतः।
तपस्तताप सुक्षेत्रे पुष्करे विजितेन्द्रियः ॥७॥

इसने पांच वर्ष की अवस्था में ही जेगीषक के उपदेश से पुष्कर में तपस्या की ॥

ब्रह्मागत्य तपन्तं तं वरं ब्रूहीत्यवोचत।
स ययाचे वरं तस्मादजेयत्वं सुरासुरैः ॥८॥

ब्रह्मा ने आकर उससे वर माँगने को कहा। उसने सुरों एवं असुरों के हाथों अजेयत्व का वर मांगा ॥

तथास्त्विति वचः प्रोच्य ब्रह्मातं प्राह दानवम्।
बदरीकाननं गच्छ तुलस्युद्वाह हेतवे ॥९॥

तथास्तु कहकर ब्रह्मा ने उससे तुलसी विवाहार्थ बदरी वन में जाने को कहा ॥

अद्भुतं तुलसीरूपं दृष्ट्वा सर्वेऽपि विस्मिताः।
कयापितुलनाभावात्तुलसीतिततोजगुः ॥१०॥

माता पितादि सभी लोग तुलसी का अद्भुत रूप देखकर बड़े विस्मित हो गये। किसी भी स्त्रीमात्र से उसकी तुलना न होने से उसको तुलसी कहने लगे ।।

आज्ञया ब्रह्मणः-शंखचूडोपि गतवांस्ततः।
तपश्चचार तुलसी यत्र धर्मध्वजात्मजा ।।११।।

जहां धर्मध्वज-पुत्री तुलसी तपस्या कर रही थी वहाँ शंखचूड ब्रह्मा की आज्ञा से गया ।।

दृष्ट्वा तां लज्जितां धर्मध्वजपुत्रीं वराननाम्।
स चाह कस्य पुत्री त्वं तपश्चरसि किं कृते ।।१२।।

उस लज्जित धर्मध्वज-पुत्री को देखकर उसने उससे पूछा कि तुम किसकी पुत्री हो और क्यों तपस्या कर रही हो ।।

सोचे धर्मध्वजसुता तपस्यामि वरार्थिनी।
स चाह शंखचूडोऽहं ब्रह्मणश्चाज्ञयाऽगतः ।।१३।।

उसने कहा कि मैं धर्मध्वज की पुत्री हूँ और वर की इच्छा से तपस्या कर रही हूँ। उसने कहा कि मैं शंखचूड हूँ और ब्रह्मा की आज्ञा से आया हूँ ।।

तुलस्युवाच यद्येवं सत्यं भवतु ते वचः।
गन्धर्वेण विवाहेन मां गृहाण शुभानन ।।१४।।

तुलसी ने कहा कि यदि ऐसा है तो तुम्हारा कथन सत्य हो। तुम मुझको गन्धर्व रीति से ग्रहण करो ।।

एतस्मिन्नेव समये ब्रह्मागत्य तयोर्द्वयोः।
विवाहं कारयामास ततोऽन्तर्धानमाप सः ।।१५।।

इसी बीच ब्रह्मा ने आकर उन दोनों का विवाह करा दिया और अन्तर्धान हो गये ॥

एवं विवाह्य तुलसीं पितुर्धाम जगाम सः ।
तपस्तप्त्वा वरं प्राप्यामोदयत्पितरौ स्वकौ ॥१६॥

इस प्रकार तप करके, वर प्राप्त करके तथा तुलसी के साथ विवाह करके वह अपने पिता के घर गया और अपने माता-पिता को प्रसन्न किया ॥

तदोत्सवो महानासीद् दानवानां पुरे पुरे ।
उपायनानि दत्तानि तस्मै सर्वासुरैर्मुदा ॥१७॥

तब दानवों के प्रत्येक नगर में महान् उत्सव हुआ, तथा समस्त असुरों ने प्रसन्न होकर उसको उपहार प्रदान किये ॥

अथ दम्भात्मजो वीरो बहुसेनासमन्वितः ।
राज्याभिषिक्तः शुक्रेण प्रतस्थे दिग्जयेच्छया ॥१८॥

शुक्राचार्य द्वारा राज्याभिषिक्त किये जाने के पश्चात् दम्भ-पुत्र ने एक बड़ी सेना के साथ दिग्विजय की इच्छा से प्रस्थान किया ॥

आगच्छन्तं तमाकर्ण्य युद्धार्थं सेनया सह ।
सदेवो देवराजोपि युद्धार्थं समुपस्थितः ॥१९॥

सेना के साथ युद्ध करने के लिए उसको आया जानकर इन्द्र भी देवताओं सहित युद्ध के लिए उपस्थित हुआ ॥

देवाः सवासवाः क्रुद्धाः चक्रुः घोरं सुसंगरम् ।
ततः पलायिताः सर्वेऽसुराः तस्मात् रणाजिरात् ॥२०॥

देवताओं ने कुपित होकर भयंकर युद्ध किया, जिससे समस्त असुर रण से भागने लगे ॥

शंखचूडस्तु तान्दृष्ट्वाऽसुरान् सर्वान् पलायितान् ।
शस्त्रैरस्त्रैश्च कदनं चकार त्रिदिवौकसाम् ॥२१॥

असुरों को भागते हुए देखकर शंखचूड़ ने हंसते हुए देवताओं का संहार करना शुरू कर दिया ॥

किं बहूक्तेन समरे शंखो जित्वा सुरान्समान् ।
त्रैलोक्यं स्ववशे कृत्वा स्वयमिन्द्रो बभूव सः ॥२२॥

अधिक क्या कहें, समस्त देवताओं को पराजित करके त्रिलोकी अपने अधीन कर स्वयं शंखचूड इन्द्र बन गया ॥

कौबेरमैन्दवं सौर्य माग्नेयं याम्यमेव च ।
वायव्यमधिकारं स हृतवान् वरगर्वतः ॥२३॥

वर के अभिमान से उसने कुवेर, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, वायु के अधिकारों का हरण कर लिया ॥

तस्मिन् शासति वीराग्र्ये न कोऽपि दुःखितोऽभवत् ।
देवान् बिना जनाः सर्वे हर्षोत्कर्षमवाप्नुवन् ॥२४॥

उसके शासन में कोई भी व्यक्ति दुःखी नहीं था, देवताओं के बिना सभी व्यक्ति प्रसन्न थे ॥

अकृष्टपच्या पृथिवी सफलाश्च महीरुहाः ।
आधयो व्याधयो नासन् शंखचूडे प्रशासति ॥२५॥

बिना हल चलाये ही पृथ्वी अन्न देती थी, वृक्ष फलदार होते थे तथा शंखचूड़ के राज्य में कोई भी आधि-व्याधि नहीं थी ॥

येबभूवुर्नृपाः पूर्वं दनुजामनुजास्तथा ।
केषामपीदृशं राज्यं न बभूवेति शुश्रुमः ॥२६॥

शंखचूढ़ से पूर्व जितने भी राजा हुए, किसी का भी ऐसा राज्य नहीं हुआ ॥

राधाशाप प्रभावात्तु दानवीं योनिसाश्रितः ।
अन्यथा सर्वथा सोऽभूद् योग्यः भक्तिप्रभावतः ॥२७॥

श्री राधा के शाप के कारण वह दानव-योनि में था, परन्तु कृष्ण-भक्ति के कारण सर्वथा योग्य और धर्मात्मा था ॥

गते बहुतिथे काले सुराः ब्रह्मपुरस्सराः ।
वैकुण्ठाधिपतेर्विष्णोः शरणं प्राप्य अब्रुवन् ॥२८॥

बहुत समय बीत जाने पर देवता ब्रह्मा के साथ विष्णु के पास गये और कहा ॥

श्रीनारायण हे विष्णो रक्षास्मान् शंखचूडतः ।
तेन दुष्टेन दैत्येन वयमत्यन्त तापिताः ॥२९॥

हे नारायण, हे विष्णो ! आप शंखचूड़ से हमारी रक्षा करें। उस दुष्ट ने हमको बहुत दुःखित कर रखा है ॥

भगवानाह भो ब्रह्मन् शंखचूडस्य तत्वतः ।
सर्वं जानामि वृत्तान्तं मद्भक्तस्य करोमि किम् ॥३०॥

भगवान् ने कहा कि मैं अपने भक्त शंखचूड़ का सब वृत्तान्त जानता हूँ, किन्तु मैं कुछ कर नहीं सकता ॥

शिवशूलेन तन्मृत्युः मयैव विहितः पुरा ।
अतश्च शंकरं यामः शंकरिष्यति शंकरः ॥३१॥

स्वयं मैंने उसकी मृत्यु का विधान शिव के शूल द्वारा किया है, अतः उन्हीं के पास चलते हैं, वे ही कल्याण करेंगे ॥

इत्युक्त्वा ब्रह्मणा साकं मुकुन्दो भगवान्सुरैः ।
समेत्य धाम कैलासं शंकरं प्रत्यवोचत ।।३२।।

ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा देवताओं के साथ शंकर के पास गये और कहा ।।

निशम्य भगवान् शम्भुः सर्वं वृत्तान्तमादितः ।
समाश्वास्य समान् देवान् प्रजिघाय निजान् गृहान् ।।३३।।

शंकर ने सारे वृत्तान्त को सुनकर देवताओं को आश्वासन दिया और उनको अपने-अपने घर भेजा ।।

कृत्वा दूतं पुष्पदन्तं गन्धर्वपतिमीश्वरः ।
प्राहिणोत् शंखचूडस्य पार्श्वे निश्चित्य तद्वधम् ।।३४।।

शंकर ने शंखचूड़ के वध का निश्चय करके गन्धर्वपति पुष्पदन्त को दूत बनाकर उसके पास भेजा ।।

स गत्वा तस्य नगरे महेन्द्रनगरोपमे ।
स्वगृहस्थं शंखचूडं ददर्श दनुजेश्वरम् ।।३५।।

महेन्द्रनगर के समान उसके नगर में जाकर उसने दनुजेश्वर शंखचूड़ को अपने घर में बैठा देखा ।।

सोऽब्रवीत् दैत्यराजत्वं शृणु दूतस्य मे वचः ।
यदुक्तं मन्मुखात्तुभ्यं स्वामिना मम शूलिना ।।३६।।

उसने कहा हे दैत्यराज ! जो मेरे स्वामी ने आपको मेरे द्वारा कहलाया है आप उसे सुनो ।।

राज्यं देहि सुरेभ्यस्त्वमधिकारांश्च सर्वशः ।
रणं वा देहि दैत्येन्द्र यथेच्छसि तथा कुरु ।।३७।।

तुम देवताओं को उनका राज्य व उनके समस्त अधिकार वापिस लौटा दो, अन्यथा मेरे साथ युद्ध करो। इनमें से जो आप ठीक समझें वह करें ॥

निशम्य वचनं तस्य दूतस्य स हसन् क्रुधा।
ऊचे राज्यं न दास्यामि करिष्यामि रणं त्वया ॥३८॥

दूत के वचन सुनकर उस दुष्ट ने हँसते हुए कहा कि राज्य तो मैं वापिस नहीं दूंगा, बल्कि युद्ध करूँगा ॥

राज्यप्राप्तिर्न वचनाद् वीरभोग्या वसुन्धरा।
समरादेव भवति गत्वा त्वं तं निवेदय ॥३९॥

यह पृथ्वी वीरभोग्या है, कथनमात्र से राज्य की प्राप्ति नहीं अपितु रण से होती है। तुम जाकर ऐसा कह दो ॥

तस्यागतस्य दूतस्य श्रुत्वा वृत्तं महेश्वरः।
कुमारसहितान्सर्वान्गणान् युद्धार्थमादिशत् ॥४०॥

शंकर ने दूत के वचन सुनकर कुमार सहित गणों को युद्ध के लिए आदेश दिया ॥

ततो गतो शैव दूते शंखचूडो महाबलः।
उवाच तुलसीं पत्नीं गृहस्याभ्यंतरे स्थिताम् ॥४१॥

दूत के चले जाने के बाद शंखचूड़ घर में स्थित अपनी पत्नी तुलसी से बोला ॥

शम्भुर्दूतमुखेनाद्य मामाह्वयति संगरे।
किं कर्तव्यं वीरपत्नि ब्रूहि त्वमपि मत्कृते ॥४२॥

दूत के द्वारा शंकर ने युद्ध का आह्वान किया है। अब मुझे क्या करना चाहिए, तुम मुझे बताओ ॥

पुत्रः कृतो मया राजा दनुजाधिपतिस्तथा।
कथं रोदिषि भोः सुभ्रु निषेधसि च संगरात् ॥४३॥

मैंने पुत्र को दैत्यों का राजा बना दिया है। तुम क्यों रो रही हो और युद्ध के लिए क्यों मना कर रही हो ॥

पाणौ गृहीतासि मया न तिष्ठामि विना त्वया।
त्वापृच्छ्यथकार्यं कुर्वेऽहं तुलसि किन्तु रोदिषि ॥४४॥

अर्थ स्पष्ट है। इस श्लोक में कवि ने अपनी घड़ी का वर्णन भी ध्वनित किया है। घड़ी का रोना टिकटिक करना होता है ॥

सा चाह नच सामान्यं विद्धि त्वं तं महेश्वरम्।
स च सर्वेश्वरो देवः परमात्मादिशब्दभाक् ॥४५॥

उसने कहा आप शंकर को सामान्य व्यक्ति नहीं समझें, वे सभी देवों में श्रेष्ठ हैं और उनको परमात्मा आदि कहा जाता है ॥

समस्तलोकसंहर्ता कर्ता विष्णोः विधेरपि।
यत्कुदृष्ट्या पलेनैव कोटिब्रह्माण्डसंक्षयः ॥४६॥

समस्त लोकों के संहर्ता ब्रह्मा और विष्णु के भी निर्माता शंकर हैं, जिनकी कुदृष्टि से एक पल में कोटि ब्रह्माण्डों का संक्षय हो जाता है ॥

कर्तुमिच्छसि तेन त्वं समरं क्वमतिस्दव।
न युक्तमिति तं चोक्त्वा मूकीभूत्वा व्यतिष्ठत ॥४७॥

तुम उन्हीं से युद्ध करने की इच्छा कर रहे हो। तुम्हारी मति कहाँ है। यह उचित नहीं है—ऐसा कहकर चुप हो गई ॥

शंखचूडश्च तामाह श्रुतं देवि त्वयोदितम्।
शोकार्तानां हि वाक्यानि न प्रशंसन्ति मानिनः ॥४८॥

शंखचूड़ ने कहा कि तुम्हारे कथन को मैंने सुन लिया। लेकिन मानी व्यक्ति शोकार्त जनों की प्रशसा नहीं करते ॥

सुखं दुःखं भयं शोको विजयश्च पराजयः।
कर्मभोगार्हं कालेन सर्वं भवति हे प्रिये ॥४६॥

हे प्रिये ! सुख-दुःख, भय-शोक, जय-पराजय सभी कर्मोपभोग काल के अनुसार होते हैं ॥

तुलसी सकलं श्रुत्वा स्वपत्युर्निश्चितं मतम्।
भविष्यं मनसा ज्ञात्वा प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम् ॥५०॥

अपने पति के निश्चित मत को सुनकर एवं भविष्य को जान कर तुलसी ने तत्काल ही प्राण त्याग दिये ॥

तुलसीं च मृतां दृष्ट्वा सोऽसुरोतिरुरोदह।
प्रियेत्वं सद्य उत्तिष्ठ न यास्यामि रणांगणे ॥५१॥

तुलसी को मृत देखकर वह असुर भी रोने लगा—हे प्रिये ! तुम तुरन्त उठो, मैं रणभूमि में नहीं जाऊँगा ॥

गृहिणी त्वं सखी त्वं मे प्रियशिष्या त्वमेव हि।
किन्न प्रियतमे यातं यातायां त्रिदिवं त्वयि ॥५२॥

हे प्रियतमे तुलसी ! तू ही मेरी गृहिणी है, तू ही सखी और तू ही प्रिय शिष्या है। तेरे स्वर्गत होने पर मेरा सब कुछ चला गया ॥

नृपस्य शोकमुद्दिश्य वाणीस्माहाशरीरिणी।
वैकुण्ठे तुलसीयाता त्वं च यातासि तत्र भोः ॥५३॥

हे शंखचूड़ ! तुलसी वैकुण्ठ में गई, तू भी जावेगा। ऐसा आकाशवाणी ने कहा ॥

मारोदीः शंखचूड त्वं संसारे कर्मसागरे।
सर्वैः साकं लग्नमस्ति जन्ममृत्युजरादिकम् ॥५४॥

हे शंखचूड़ ! क्यों रोता है, यह संसार कर्मसागर है, इसमें जन्म-मृत्यु, जरादि सभी के साथ लगा हुआ है ॥

दीर्घस्वप्नोपमं चेमं दीर्घं वा चित्तविभ्रमम्।
संसारं निखिलं ज्ञात्वा शंखचूड सुखीभव ॥५५॥

हे शंखचूड़ ! यह सारा संसार दीर्घ स्वप्न के समान है, अथवा दीर्घ चित्त भ्रम है, स्थायी नहीं है। अतः जब तक रहो, सुख से रहो ॥

वाताभ्रविभ्रमाकारं संसारं शंखचूड भोः।
प्राणान् तृणाम्बु सदृशान् ज्ञात्वा चिन्तां परित्यज ॥५६॥

हे शंखचूड़ ! यह संसार वायु द्वारा इतस्ततः भ्रमित बादल के समान क्षणस्थायी ही है। हमारे प्राण तिनके के जल के समान क्षणभंगुर हैं। फिर चिन्ता करने से क्या लाभ ॥

जीवोभोक्तुमनीशोयं सुखदुःखे स्वयेच्छया।
प्राप्नोति कर्मणोगत्या लाभालाभौ जयाजयौ ॥५७॥

हे सौम्य ! यह जीव सुख और दुःख अपनी इच्छा से नहीं भोग सकता, किन्तु कर्म की गति से हानि-लाभ और जय-पराजय प्राप्त करता है ॥

माता पितृ शतं प्राप्तं पुत्रदारशतं तथा।
प्राप्तेकाले विनष्टं च कस्यते कस्य वा भवान् ॥५८॥

इस संसार प्रवाह में अब तक हमारे सैकड़ों माता-पिता और सैकड़ों स्त्री-पुत्र हो चुके हैं और हम सैकड़ों के माता-पिता हो चुके होंगे, परन्तु आज वे सब कहां हैं। सभी काल की गाल में चले गये और तुम भी

जाग्रोगे। वे किसके होकर रहे और तुम किसके होकर रहोगे। अतः जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में चिन्ता करना व्यर्थ है ॥

अनयेयं तनुः त्यक्ता वृक्षरूपा भविष्यति।
शालग्रामेण हरिणा सदाक्रीडां करिष्यति ॥५९॥

इसने जो शरीर छोड़ा है यह वृक्ष रूप हो जायेगी और शालग्राम रूपधारी विष्णु के साथ सदैव क्रीड़ा करेगी ॥

वाण्यास्तद् वचनं श्रुत्वा जहौ शोकं स दानवः।
प्रतस्थे समरं कर्तुं शंकरं प्रति सेनया ॥६०॥

यह आकाशवाणी सुनकर शखचूड़ ने शोक त्याग दिया और बहुत बड़ी सेना के साथ युद्ध करने के लिए चल पड़ा ॥

वम्वारवं प्रकुर्वाणान् गर्दभान् महिषां स्तथा।
ददर्श पथि गच्छन् स भयव्याकुल मानसः ॥६१॥

मार्ग में जाते हुए उसने गधों और भैंसों को शब्द करते हुए देखा। इस दुःशकुन से वह भयभीत भी हुआ ॥

देवदानव सेनानां बभूवानुपमो रणः।
देवा युयुधिरे तत्र धर्मेणैव तथेतरे ॥६२॥

देवताओं एवं दानवों की सेनाओं में अद्भुत युद्ध हुआ, परन्तु उन्होंने धर्मपूर्वक युद्ध किया ॥

तीक्ष्णैर्वाणैर्विनिघ्नन्तो वीरान् वीरा महामृधे।
व्यनदन्समरे तस्मिन् सतोया इव तोयदाः ॥६३॥

उस महान् युद्ध में एक दूसरे पर तीक्ष्ण वाणों से प्रहार करते हुए उन्होंने पानी से भरे हुए मेघों के समान नाद किया ॥

देवाः तस्य शरैर्विद्धा युद्धात्सर्वे पलायिताः ।
एक एव कुमारोहि तदग्रे समतिष्ठत ॥६४॥

देवता शंखचूड़ की वाणवर्षा से भयभीत होकर युद्ध से भागने लगे । केवल कुमार कार्तिकेय ही उसके सम्मुख टिके रहे ॥

तद्बाणात्ताड़ितः स्कन्दो नीहारादिव भास्करः ।
उत्थायशक्तिमादाय चिक्षेपासुरमस्तके ॥६५॥

तुषार द्वारा सूर्य के समान उसके वाणों से ताड़ित होकर भी स्कन्द ने उठकर अपनी शक्ति से उसके मस्तक पर प्रहार किया ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो वीरभद्रोऽपि चाययौ ।
तयोराशीन्महद्युद्धं परस्पर वधेच्छया ॥६६॥

इसी बीच वीरभद्र भी वहां आ गये और एक-दूसरे के वध की कामना से उन दोनों में घोर युद्ध हुआ ॥

आययौ समरे शम्भुः प्रभूत्तगणसंवृतः ।
भैरव-क्षेत्रपालाभ्यां स्वसुताभ्यां तथैव च ॥६७॥

शिव अपने सब गणों के साथ तथा स्वपुत्र गणेश, स्कन्द, भैरव तथा क्षेत्रपालों के साथ युद्ध में आए ॥

शंखचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य सः ।
प्रणम्य परया भक्त्या विमानं पुनरारुहत् ॥६८॥

शिव को देखकर शंखचूड़ विमान से उतर गया और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके पुनः विमान पर बैठ गया ॥

भगवान् शंकरः तस्मै शूलं चिक्षेप सत्वरम् ।
शूलेनैव च तच्छूलं सजघान स दानवः ॥६९॥

शंकर ने शीघ्र ही उस पर शूल से प्रहार किया। उस दानव ने भी शूल पर शूल से प्रहार किया ॥

शंकरः प्राह भो दैत्य मां न जानासि चेश्वरम् ।
अतस्त्वां निहनिष्यामि करिष्यामि सुरोत्सवम् ॥७०॥

शंकर ने कहा—तुम मुझ ईश्वर को नहीं जानते हो, अतः मैं तुम्हें मारकर देवताओं को प्रसन्न करूंगा ॥

दैत्य आह त्वमद्यैव ज्ञास्यसेयादृशोह्यसि ।
मूढाः श्लाघन्त आत्मानं नो वीराः कर्मणः कराः ॥७१॥

दैत्य ने कहा—आप ईश्वर हैं अथवा नहीं, यह तो युद्ध से ज्ञात होगा। मूर्ख अपनी प्रशंसा आप करते हैं वीर नहीं। वे तो कार्य करते हैं। "ब्रह्मापि लघुतां याति खलस्वगुणवर्णनात्" ॥

जानामि त्वां महेशानं देवानां पक्ष पातिनम् ।
विष्णुं चैव तथाभूतं ब्रह्माणं चैवातादृशम् ॥७२॥

मैं जानता हूँ कि आप देवताओं का पक्ष लेते हैं। विष्णु एवं ब्रह्मा भी देवताओं का पक्ष लेते हैं ॥

शंकरः प्राह भो दैत्य न वयं पक्षपातिनः ।
भक्ताधीनः करोम्येतद् ब्रह्मा विष्णुश्चतादृशौ ॥७३॥

शंकर ने कहा कि हम पक्षपाती नहीं हैं। भक्तों के अधीन होकर ही ऐसा करते हैं। मैं तथा ब्रह्मा, विष्णु भी वैसे ही हैं ॥

अलं वादविवादाभ्यां भवतादावयो रणः ।
स निर्णेष्यति तथ्येन तावकं मामकं बलम् ॥७४॥

अब वाद-विवाद को छोड़ दो। हमारा और तुम्हारा युद्ध हो जाये। उसी में मेरे और तुम्हारे बल का निर्णय होगा ॥

एतस्मिन्नेव समये नभोवाणी बभूव ह।
सुराणामसुराणां च सर्वेषां शृण्वतां पुरः ॥७५॥

इसी बीच देवताओं और असुरों को सुनाई देने वाली आकाशवाणी हुई ॥

हन्तुं क्षणेन शक्तोसि किं क्रीडसि शिवामुना।
कुर्वस्मत्कामना पूर्तिं कीर्तिं च भुवनत्रये ॥७६॥

हे शिव, आप तो क्षणभर में इसको मारने में समर्थ हैं, फिर इस दुरात्मा के साथ क्यों खेल रहे हैं। इसे मार कर आप हमारी इच्छा की पूर्ति कीजिये और तीनों लोकों में यश फैलाइये ॥

शंखचूड समागच्छ शिवेन निहतो रणे।
गोलोके राधया साकं मुकुन्दः त्वां प्रतीक्षते ॥७७॥

हे शंखचूड़, शिव के द्वारा मारे जाने के पश्चात् तुम गोलोक में आओ, वहां राधा के साथ मुकुन्द तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥

यावद् दैत्यो रणं कर्तुं शस्त्रमुत्थाप्य मुद्यतः।
तावद्दैत्यशिरः शम्भुः भूतलायन्यवेदयत् ॥७८॥

जितने समय में उस दैत्य ने युद्ध करने का उपक्रम किया उसी समय में शिव ने अपने शूल से उसका मस्तक काट कर पृथ्वी में फेंक दिया ॥

दिशः प्रसेदुः सकला नृपालाः
नेदुस्तथा दुन्दुभयोऽपि नाके।
हते तु दैत्ये खलु शंखचूडे
जाताः समस्ताः त्रिदशाः सहर्षाः ॥७९॥

शंखचूड़ के मारे जाने पर समस्त दिशाएं निर्मल हो गईं। स्वर्ग में दुन्दुभि बजने लगी तथा समस्त देवता प्रसन्न हो गये ॥

गतोऽयं द्वादशः सर्गो निसर्गोदात्तप्रक्रमः ।
चतुर्दश प्रबन्धानां भ्रातुश्चैतस्य काव्यस्य ॥८०॥

चौदह प्रबन्धों के भ्राता इस काव्य में निसर्गतः उत्तम बारहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
शिवद्वाराशंखचूड़वधात्मकः
द्वादशः सर्गः ॥

अथ शिवद्वारागजासुरवधात्मकः

त्रयोदशः सर्गः

—०—०—

देव्या पुरा विनिहते महिषासुरेन्द्रे
तत्पुत्र उग्र प्रकृतिः सगजासुराख्यः ।
सर्वान्सुरानधिकृतान्पदतः स्वकीयात्
कर्तुं पृथक् स्वमनसा विचचार मूढः ॥१॥

देवी द्वारा महिषासुर का वध कर दिये जाने के पश्चात् गजासुर नामक उसके पुत्र ने समस्त देवताओं को अपने पद से पृथक् करने का विचार किया ॥

देव्याहतस्य सुरप्रेरणया पितुः सः
तद्वैरसंस्मरणतः परितापयुक्तः ।
श्रीमद्विधेः परमदारुण मूर्ध्वबाहुः
द्रोण्यां हिमालयगिरेः तप आततान ॥२॥

देवताओं की प्रेरणा से देवी द्वारा मारे गये अपने पिता के वैर के स्मरण से दुःखित गजासुर ने हिमालय पर्वत में ऊपर हाथ उठाकर घोर तप किया ॥

सोऽयं जटाभिरभितः प्रलयार्कतुल्यः
रेजे गजासुर उदारमतिर्महात्मा ।
तन्मूर्धतो ह्युदभवत्तपसः कृशानुः
विक्षोभमाप स ततस्तु जलाकरोपि ॥३॥

उदारमति गजासुर जटाओं के बढ़ जाने से प्रलयकालीन सूर्य के

समान शोभित हुआ। तप के कारण उसके मस्तक से अग्नि निकलने लगी, जिससे समुद्र भी विक्षुब्ध होने लगा ।।

पेतुर्ग्रहैश्च सहिता यत एव ताराः
आशादशाप परितापयुता बभूवुः ।
तप्ताः ततो वरुण वह्नि यमार्क वाताः
याता विधेः शरणमाशु शुचातिखिलाः ।।४।।

ग्रहों सहित तारागण गिर गये, दिशाएं मलिन हो गईं। वरुण, वह्नि, यम, सूर्य, वायु अति दुःखित होकर ब्रह्मा की शरण में गये ।।

ऊचुः सुराः प्रणतिनम्रशिरोधरांशाः
त्रायस्व सम्प्रति पितामह तद् भयान्नः ।
स्थातुं कुतोऽपि नहि शक्तियुता तपोग्नेः
नंक्ष्यन्ति सर्वजनताः परितापयुक्ताः ।।५।।

देवताओं ने प्रणाम करते हुए कहा—हे पितामह ! इस भय से हमारी रक्षा कीजिये। उसके तप की अग्नि से पीड़ित हम कहीं भी ठहरने में असमर्थ हैं, तथा इसके ताप से समस्त लोक ही नष्ट हो जायेंगे ।।

विज्ञापितो विधिरसौ सहसाऽजगाम
यत्राश्रमो महिषपुत्रगजासुरस्य ।
दृष्ट्वा तपन्त मति तं स्मयमाप दैत्यं
तं चाह दैत्यवर आशु वरं वृणीष्व ।।६।।

इस प्रकार विज्ञापित किये जाने पर ब्रह्मा गजासुर के आश्रम में आये तथा तपस्या करते हुए दैत्य को वर मांगने के लिए कहा ।।

स चाह देव यदिते वरदानवाञ्छा
एतान्वरान् वितर मे मनसीप्सितांस्त्वं ।
कामेन निर्जित मनोभिरवध्यता मे
पुंभिश्च लोकपति भूरि समृद्धिता च ।।७।।

उसने (दैत्य ने) कहा—देव ! यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं तो ये वर दें कि जिनका मन कामदेव ने जीत लिया है उनके लिए मैं अवध्य होऊँ, लोकपति बनूं और मेरी बहुत अधिक समृद्धि हो ।।

एवं भवत्विति तदा विधिना स उक्तः
दैत्यः प्रसन्नमनसा गृहमाजगाम ।
जित्वा ततो निखिल लोकपतीन्सुरांश्च
गन्धर्व किन्नर नरान्स्ववशे चकार ।।८।।

ब्रह्मा द्वारा तथास्तु कहे जाने पर वह प्रसन्न होकर घर चला आया तथा उसने समस्त लोकपालों, देवताओं, गन्धर्वों, किन्नरों एवं मनुष्यों को जीत कर अपने वश में कर लिया ।।.

सर्वान्सुरानधिकृतान्पदतः स्वकीयात्
चक्रे पृथक् स सहसातिविवृद्धमन्युः ।
रेमे सुरासुरनरेश्वरसुन्दरीभिः
सर्वाप्सरोभिरपि नैव च तृप्यति स्म ।।९।।

उसने क्रोधपूर्वक सहसा ही समस्त देवताओं को अपने-अपने पदों से मुक्त कर दिया तथा सुर-असुर तथा मर्त्यलोक की सुन्दरियों एवं अप्सराओं के साथ रमण करने पर भी तृप्त नहीं हुआ ।।

एवं गते बहुतिथे समये स दुष्टः
विप्रान्सुरान् मुनि वरांश्च तपस्विनश्च ।
चिक्लेश धर्मसहितांस्तु विशेषरूपात्
संस्मृत्य वैरमसुरः सह देवतानाम् ।।१०।।

उस दुष्ट ने इस प्रकार बहुत समय बीत जाने पर असुरों के साथ देवताओं के वैर का स्मरण करके ब्राह्मणों, देवताओं, मुनियों तथा विशेषतः धर्मात्मा लोगों को सताना शुरू कर दिया ॥

दुष्टः स एकसमये शिवराजधान्याम्
काश्यां स्वकीयगमनं कृतवानकस्मात् ।
तत्रागतेऽसुरवरे परितो बभूव
त्रायस्व दुःखबहुलो ध्वनिरासमन्तात् ॥११॥

एक बार वह शिव की राजधानी काशी में गया । उसको वहां आया देखकर सब ओर 'रक्षा करो, रक्षा करो' की ध्वनि होने लगी ॥

देवा महेन्द्रवरुणाः करुणालयाय
काशीस्थरक्षणपराय महेश्वराय ।
तप्ता गजासुरवरस्य भृशार्तिदानात्
कष्टं ददाति स इदं कथयांबभूवुः ॥१२॥

इन्द्र, वरुण आदि देवताओं ने गजासुर द्वारा प्रदत्त दुःखों से व्याकुल होकर काशी नगरी की रक्षा में तत्पर शिव के पास जाकर अपने कष्टों का निवेदन किया ॥

यत्रैव स स्वचरणं प्रददाति भूमौ
तत्राचलापि च चला भवति क्षितिर्वै ।
दोर्दण्डघात करणेन शिलोच्चयोऽपि
चूर्णीक्षणाद् भवति तस्य च दानवस्य ॥१३॥

भूमि पर जहां-जहां वह अपने चरण रखता है वहां-वहां अचला पृथ्वी भी चलायमान हो जाती है। उसके हाथों के प्रहार से पर्वत भी क्षणभर में चूर-चूर हो जाते हैं ॥

निःश्वासमात्रकरणेन यतो भवन्ति
कल्लोलिताश्च परितः सरितः समुद्राः।
यन्नेत्रयोश्च तड़िता सहपिंगलत्वं
नो धार्यते स च सुरारिरिहागतोऽस्ति ॥१४॥

जिसके निश्वासमात्र से नदियाँ एवं समुद्र क्षुब्ध हो जाते हैं, जिसके नेत्रों को देखकर विद्युत् पिंगलत्व को धारण नहीं करती है, वह देवताओं का शत्रु यहां आ गया है ॥

त्वं मायया त्रिगुणयापि जगत्समग्रम्
संयच्छसे सृजसि पासि च सज्जसेन।
त्वं विश्वकारणमनादिरनन्तशक्तिः
भक्त्या त्वदीयचरणं शरणं प्रयाम: ॥१५॥

आप अपनी त्रिगुणात्मक माया से इस समस्त जगत् को उत्पन्न करते हैं, इसकी रक्षा करते हैं। आप ही इस विश्व के कारण हैं, अनादि एवं अनन्त शक्ति हैं। हम भक्तिपूर्वक आपके चरणों की शरण में आये हैं॥

कृष्णोऽपि यस्य किल शक्त्यवबोधकस्य
नो वेद तत्वमथ कृत्स्नतयापि वेदः।
त्वां भावयाम इह वै वयमद्य खिन्नाः
तन्नाशनायप्रणतार्तिहरस्त्वमेव ॥१६॥

जिस शक्ति का अवबोध करने वाले शंकर का न केवल विष्णु अपितु वेद भगवान् भी पूर्णरूपेण तत्त्व यथार्थतः नहीं जानते हैं। हम दुःखित देवता आपकी स्तुति कर रहे हैं। आप हमारे दुःखों को शीघ्र नष्ट करें और हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥

त्वत्पादपद्ममकरन्दरसं हि पीत्वा
हित्वा समस्त विषयान् विषवद् रसज्ञः ।
स्वानन्द नीरनिधि वीचि निमग्न चित्तैः
संमन्यते जगदशेष मिदं तृणाभम् ॥१७॥

आपके चरण-कमलों के रस का पान करके तथा समस्त विषयों को विषवत् त्याग कर रसज्ञ स्वानन्द रस में निमग्न होकर इस समस्त संसार को तृण के समान समझते हैं ॥

शंकर सर्वस्य त्वमेव जगतोऽसि स्वामी ।
क्षमासिन्धुरनुपम दयावानन्तर्यामी ॥१८॥

हे शंकर ! आप इस समस्त जगत् के स्वामी हैं, क्षमा के समुद्र हैं, दयावान् और अन्तर्यामी हैं ॥

तव शरणं समुपागतो यदि ना कश्चन तापी ।
तर्हि सवितुरप्यग्रतो भवेत्तमः संस्थापि ॥१९॥

यदि आपकी शरण में आया हुआ कोई व्यक्ति भी दुःखित रहे तो सूर्य के समक्ष अंधकार भी रह सकता है ॥

सिन्धु स्थाने बिन्दुमपि कर्तुं त्वं शक्तः ।
भवति मेरुरपि सर्षपः कृपया तवरिक्तः ॥२०॥

आप कुपित होकर समुद्र के स्थान पर बिन्दु करने में समर्थ हो । आपकी कृपा से रहित सुमेरु भी सर्षप हो जाता है ॥

त्वं सर्वैरपि सर्वदा भक्त्या स्मरणीयः ।
दुःखौघस्तेषां सदा त्वयापहरणीयः ॥२१॥

समस्त लोगों को सदैव ही आपका स्मरण करना चाहिए तथा आपको उनके दुःखों का निवारण करना चाहिए ॥

संप्रार्थितः स भगवान्खलु देवताभिः
इत्थं प्रकथ्य प्रजिघाय च पुष्पदन्तम् ।
रे दुष्ट किं त्वमसि कर्तुमिहागतो वै
काश्यां ममाखिल गुरोः महिषस्य पुत्र ॥२२॥

देवताओं द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर शिव ने पुष्पदन्त को यह संदेश देकर भेजा कि अरे दुष्ट महिषपुत्र, तुम इस काशी में क्या करने आए हो ॥

ऊचे समे पितरि मृत्युपदं प्रयाते
विच्छेदमापभुवियत्त्वसुरीयराज्यं ।
तस्यैव रुद्र पुनरानयनस्य हेतोः
विप्रान् सुरान् तवगणांश्चनिहन्मि चाद्य ॥२३॥

गजासुर बोला—हे रुद्र, मेरे पिता के मरने पर असुर राज्य समाप्त हो गया था, उसी के पुनः लाने को मैं सबको मार रहा हूँ ॥

ईशः प्राह गजासुरत्वमधुनानुज्ञां मदीयां शृणु
स्वाराज्यं लभतां शचीपतिरथो सर्वाधिकारान्सुराः ।
पातालं द्रुत मेहि ते यदि पुनः संजीवनाय स्पृहा
सन्देहादथयोद्धुमिच्छति भवान् शीघ्रं समागच्छतु ॥२४॥

शिव ने कहा—उसे जाकर कहो कि मेरी आज्ञा है कि इन्द्र राजा हो, देवता सब अधिकार प्राप्त करें तथा तुम पाताल में चले जाओ, नहीं तो युद्ध करो ॥

स चाह एमि सहते रणहेतवेऽहं
द्रक्ष्या मिते भुजबलं विपुलं क्रियद्धि ।
उक्त्वैव शीघ्रमगमत्स शिवस्य पार्श्वे
गर्जन् गजासुरइतिस्वगणान् दिदेश ॥२५॥

गजासुर बोला—हे रुद्र, तेरे साथ युद्ध करने शीघ्र आ रहा हूँ। तेरा भुजबल देखूंगा। ऐसा कहकर वह शिव के समीप युद्ध करने गया॥

रे चिक्षुर त्वमधुनाक्षुर वद्भवाजौ
रे चामर त्वमधुना त्यजपामरत्वम्।
युद्धं महाहनुवदुग्र मुदग्रकुर्याः
त्वं वाष्कल त्यज विडाल च कालभीतिम् ॥२६॥

रे चिक्षुर, तू क्षुर हो जा ! रे चामर अब तू पामरपना छोड़ दे, रे उदग्र, तू महादनु की तरह युद्ध कर। हे वाष्कल, अब तू काल का भय छोड़ दे॥

वाणैः त्रिशूल परिघादि समस्त शस्त्रैः
विव्याध देवगिरिशं गजदैत्यवर्यः।
रुद्रोपिरुद्रवपुषा परिलक्ष्यमाणः
तद्वाण शूलपरिघान् तिलशो जघान ॥२७॥

गजासुर ने त्रिशूल, बाणादि से गिरिश को विद्ध किया। रुद्र व पुरुद्र ने भी गजासुर के सभी शस्त्र काट दिये॥

इत्थं तयोः प्रबलयोः समरोऽपि घोरो
जज्ञे प्रभूत समयावधि तत्र काले।
रुद्रं गजः स निजगाद हतोऽसि पश्य
देवोपितं मदयुतं हतवान् त्रिशूलात् ॥२८॥

दोनों का अति घोर युद्ध हुआ। गजासुर ने हतोसि कह कर शस्त्र छोड़ा। रुद्र ने त्रिशूल से वह शस्त्र काट दिया॥

प्रोतः त्रिशूलाशिखरे स च दैत्यराजः
छत्रीकृतं निजममन्यत नष्टमेव।

तं शंकरं स्तुतिशतेन चकार तुष्टम्
देवोपितं समवदच्च वरं वृणीष्व ॥२९॥

दैत्य गजासुर अपने को त्रिशूल के अग्रभाग से विद्ध देखकर तथा अपने को मृत मानकर शंकर की स्तुति करने लगा तथा शंकर ने वर मांगने को कहा ॥

भगवति रतिरस्तुमेऽनवद्या
सशिव शिवे यत एव सर्वविद्याः।
अवसितिसमये यमीक्ष्य लोकः
भवति समस्तनिरस्तदुःखशोकः ॥३०॥

शिवा सहित भगवान् शिव में मेरी निष्काम् प्रीति हो। जिनको मृत्यु समय में देखकर मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥

चरीकर्ति वरीभर्ति संजरीहर्ति यो जगत्।
अशेषकामदाता मे भवेत्त्राता भवार्णवात् ॥३१॥

जो संसार का कर्ता-भर्ता-हर्ता है, वे भगवान् शिव मेरा मोक्ष करने वाले हों ॥

ऊचे स देव यदि मे भगवान्प्रसन्नः
कृत्ति वसान मम तेऽस्त्र पवित्रभूताम्।
उक्त्वैव मस्तु स च तस्य कृतिं वसित्वा
देवः प्रसिद्धि मगमत् खलु कृत्तिवासाः ॥३२॥

वह बोला आप मेरी कृति (चर्म) को धारण करें। शंकर ने तथास्तु कहकर उसकी कृत्ति को धारण किया और तभी से कृत्तिवासा कहलाये ॥

ब्रह्मादयः सुरगणाः खलु तत्र येये
तस्मिन्मृते सति सुरारिगजासुराख्ये।

सर्वाः प्रजा मुमुदिरे सप्रजाश्च तस्य
स्वस्वालयं च प्रययुः प्रमदातिरेकात् ।।३३।।

गजासुर के मरने पर सपुत्र-पौत्रादि सहित सारी प्रजा प्रसन्न हो गई, और ब्रह्मादि देवता तथा प्रजाजन अपने-अपने घर गये ।।

त्रयोदशो गतः सर्गो गजासुरवधात्मकः ।
चतुर्दशप्रबन्धानां भ्रातुः चैतस्य काव्यस्य ।।३४।।

चौदह प्रबन्धों के भ्राता इस काव्य में गजासुरवध नामक तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।।

।। इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
शिवद्वारागजासुरवधात्मकः
त्रयोदशः सर्गः ।।

अथ शिवद्वारादुन्दुभिवधात्मकः

चतुर्दशः सर्गः

—०—०—

दैत्ये पुरा विनिहते कनकाक्षसंज्ञे,
श्रीविष्णुना निखिलदैत्यप्रसूर्दितिः सा।
कष्ट महत् समधिगत्य च दुन्दुभिं वै,
प्रोवाच कास्य भवतीह प्रतिक्रियाद्य ॥१॥

विष्णु द्वारा हिरण्याक्ष नामक दैत्य के मारे जाने पर दैत्यों की माता द्रिति को बहुत कष्ट हुग्रा। उसने दुन्दुभि नामैक दैत्य से पूछा कि अब इसकी क्या प्रतिक्रिया की जाये ॥

आश्वास्य तां दितिमसौ सकलैः प्रयत्नैः,
चक्रे उपायममरेन्द्रपराजयाय।
विप्रांस्तथा सुरभयः सुरगर्वरूपाः,
नष्टाः सुराः स्युरुभयोरनयोर्विनाशे ॥२॥

उसने (दुन्दुभि) प्रयत्नपूर्वक द्रिति को आश्वासन देकर इन्द्र को पराजित करने का विचार किया। उसने सोचा कि ब्राह्मण और गायें, ये दो ही देवताओं के अभिमान का कारण हैं। इनके नष्ट हो जाने पर देवताओं का भी विनाश हो जायेगा ॥

यज्ञाश्रिताः सुमनसः स च मन्त्ररूपः,
मन्त्राश्च विप्रमुखतो हि विनिस्सरन्ति।
गावश्च तत्सहकृता अपि तादृशाः स्युः,
नष्टेषु तेषु खलु तासु च देवनाशः ॥३॥

यज्ञ देवताओं का आश्रय है और यज्ञ मंत्ररूप है, मंत्र ब्राह्मणों के मुख से निकलते हैं। गायों का सम्बन्ध ब्राह्मणों के साथ होने के कारण उनकी दशा भी ब्राह्मणों के अनुरूप ही होगी। अतः उनके एवं गायों के नष्ट हो जाने पर देवताओं का भी विनाश हो जायेगा ।।

तस्मान्मया सकलयत्नपरेण विप्राः,
वध्याः सदैव ममयत्र मिलन्ति गावः।
काश्यां मिलन्ति बहुदुग्धयुतास्तु गावः,
तत्रैव सन्ति विविधागमवेदि विप्राः ।।४।।

अतः मुझे यत्नपूर्वक ब्राह्मणों एवं गायों का विनाश करना चाहिए। अधिक दूध वाली गायें काशी में मिलती हैं और वहीं वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण भी रहते हैं ।।

काश्यां मया प्रथममेव विनिश्चयेन,
गन्तव्यमाशु हननाय तयोर्द्वयोश्च।
इत्थं विविच्य मनसा प्रतिपद्य काशीं,
धेनूर्जघान बहुलान् विदुषो विशेषात् ।।५।।

अतः मुझे शीघ्र ही इन दोनों का नाश करने के लिये काशी जाना चाहिए। इस प्रकार मन में निश्चय करके और काशी में जाकर उसने अनेकानेक गायों एवं विद्वानों का वध किया ।।

बभ्राम रात्रिदिवसं स च दुष्टबुद्धिः,
नानाविधानि निजरूपवराणि धृत्वा।
दृष्ट्वोटजेषु विशतो हि मुनींश्च गाश्च,
व्याघ्रस्य रूपमवधार्य स भक्षति स्म ।।६।।

वह दुष्टबुद्धि अनेक रूपों को धर कर दिन-रात घूमा करता था, तथा मुनियों और गायों को झोंपड़ियों में घुसते हुए देखकर वह व्याघ्र का रूप धारण करके उन्हें खा जाता था ।।

ये ब्राह्मणाः समिध आहरणाय यान्ति,
घोरे वनेऽतिगहने स विलोक्य तान्वै ।
धेनूस्तथैव चरणाय गता जघान,
भूयान्गतो हि समयः इदमेव चक्रे ।।७।।

जो ब्राह्मण घोर वन में समिधा लेने जाते थे और जो गायें वन में चरने जाती थीं उनको देखकर वह मार देता था और ऐसा करते हुए उसे बहुत समय बीत गया ।।

तत्रैकदैकविबुधः शिवरात्रिमध्ये,
चक्षुर्निमील्य शिवमंत्रवरं जजाप ।
तं व्याघ्ररूपधर एष निहन्तुमैच्छत्
यावत्स तावदिह शंकर आविरासीत् ।।८।।

एक बार शिवरात्रि को एक विद्वान् आंख बन्द करके शिव-मंत्र का जाप कर रहा था कि व्याघ्र का रूप धारण करके इस दैत्य ने उसको मार डालना चाहा । इतने में ही वहां शंकर प्रकट हो गये ।।

तदनु दनुजदुष्टः स्वौजसातिप्रहृष्टः,
निजवपुषि समास त्रासयन्सर्वलोकान् ।
मुहुरपि च ननर्द क्ष्मारजः संममर्द,
प्रबलतरनखाग्रः पर्वतोच्चैस्त्वभारः ।।९।।

तब उस दुष्ट दैत्य ने अपने बल से गर्वित होकर अपने वास्तविक रूप को धारण कर लिया और सभी को त्रास देने लगा । वह बार-बार शब्द करने लगा और पृथ्वी की धूल को उछालने लगा । उसके नख पर्वत के समान बड़े-बड़े थे ।।

खलचरित निकृष्ट दुष्टबुद्धे,
किं बहुलेन बलेन गर्वितोऽसि ।

पशुपतिरितिदुन्दुभिं जगाद,
असुरपतिं तमवेक्ष्य रुष्टदृष्ट्या ॥१०॥

शिव ने क्रोधपूर्वक असुरपति दुन्दुभि को देखकर कहा—अरे निकृष्ट दुष्ट बुद्धे, अधिक बल का गर्व क्यों करता है ॥

या धेनवो मान्यतमाः सुरैरपि,
श्रुतेर्मतेविश्वप्रसूतिहेतवः ।
पीयूषतुल्यैश्च पयोभिरञ्चिताः,
ता निघ्नते ते धरणी घृणीयते ॥११॥

जो गायें देवताओं और असुरो को भी सदैव मान्य हैं और जो वेद के मत में जगत् की मातृाएं हैं (गावोविश्वस्य मातरः) ऐसी गायों को भी मारने वाले तुमसे पृथ्वी भी घृणा करती है ॥

याः शुष्कघासस्य जलस्य भक्षणात्,
दिव्यस्य दुग्धस्य घृतस्य दायकाः ।
यत्पंचगव्यानि जनं पुनन्ति वै,
ता गाघ्नते ते धरणी घृणीयते ॥१२॥

जो गायें वन में सुष्कतृण खाकर अमृत तुल्य दुग्ध देती हैं, जिनका पंचगव्य दुष्ट जन को पवित्र करता है उनको मारते हुए तुमसे पृथ्वी भी घृणा करती है ॥

ये ब्राह्मणा वेदविदो मनीषिणः,
यज्ञादि कर्तुं च सदैव कांक्षिणः ।
गृह्णन्ति कस्मादपि नैव किञ्चन,
तान्निघ्नते ते धरणी घृणीयते ॥१३॥

जो ब्राह्मण समस्त वेदों के ज्ञाता हैं और यज्ञादि कर्म करने के लिए

सदा प्रयत्न करते हैं, तथा कहीं से किसी से भी कुछ मांगते नहीं है, उनका वध करने वाले तुम से पृथ्वी भी घृणा करती है ॥

ये ब्राह्मणा नियमतः कामयन्ते,
दारानपत्यायतपोर्थजीवनम् ।
वांच्छन्ति भिक्षामपि नैव याचिताम्
तान्निघ्नते ते धरणी घृणीयते ॥१४॥

जो ब्राह्मण स्त्रियों को अपत्यकरणार्थ और आयु को तपस्या के लिये चाहते है तथा किसी से कुछ लेते नहीं, उनको मारते हुए तुम से पृथ्वी भी घृणा करती है ॥

रुद्रं समायान्तमवेक्ष्य खिन्नः
निजस्वरूपेण तमीश्वरं सः ।
दिव्यैः स्तवैः तोषयतिस्म देवम्,
देवेन प्रोक्तः वरमाययाचे ॥१५॥

रुद्र को आता देखकर वह खिन्न हो गया और अपने वास्तविक रूप को धारण करके उसने शिव की स्तुति की और उनको स्तुति से प्रसन्न करके यह वर मांगा ॥

तुष्टोऽसि चेद् शिव वरं इममेव देहि,
व्याघ्रेश्वरेति तव नाम भवेत्प्रसिद्धम् ।
उक्त्वैवमस्तु भगवान् स शिवः स्वमुष्ट्या,
प्राताडयद् शिरसि सोपि ममार दैत्यः ॥१६॥

हे शिव, यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दें कि आप व्याघ्रेश्वर नाम से प्रसिद्ध हों। शिव ने तथास्तु कहकर अपनी मुष्टि से उस पर प्रहार किया, जिससे वह दैत्य मर गया ॥

हतेतु तस्मिन् त्रिपुरारिणासुरे,
सुराः प्रसेदुर्मुनयश्चसर्वे ।
चक्रुर्यशोगानमतीवशम्भोः,
गन्धर्वकिन्नरनराप्सरसस्तथैव ॥१७॥

शिव द्वारा उस असुर का वध कर दिये जाने पर समस्त देवता एवं मुनिगण तथा गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य, अप्सरा आदि प्रसन्न हो गये और शिव का यशोगान करने लगे ॥

आस्तां पुरा दितिसुतौवरगर्वदृप्तौ,
नाम्ना दलेति विदलेति च सुप्रसिद्धौ ।
ताभ्यां तृणीकृतजगत्रयमाशुदृष्ट्वा,
देवा विधेः शरणमेत्य च तुष्टुवुस्तम् ॥१८॥

दिति के दल-विदल नामक दो पुत्र वर पाने के कारण अति दुष्ट हो गये थे । वे तीनों लोकों को तृणवत् तुच्छ मानने लगे । यह देखकर देवता ब्रह्मा की शरण में गये और स्तुति करने लगे ॥

हे भक्तवत्सल विधे, शरणं प्रयातान्
देवान् प्ररक्ष्य नियमं निजमाशु रक्ष ।
तानाहसोऽपि भगवान् विधिरद्य देवाः
वध्याविमौ भगवतीशिवया भवेताम् ॥१९॥

हे भक्त वत्सल विधे, आप शरण में आये हुए देवताओं की रक्षा करके अपने नियम की रक्षा करें । तब ब्रह्मा ने कहा कि ये दोनों भगवती शिवा के द्वारा ही वध्य हैं ॥

तावेकदा, सकलदेववरान् विजित्य,
सर्वाधिकार रहितान् कुरुतः स्म दैत्यौ ।
पार्श्वे गतौ नगसुतापरिरम्भणाय,
सम्यक् समुद्यमपरौ प्रबभूवतु द्वौ ॥२०॥

एक बार समस्त दैत्यों को जीत कर एवं उनके सारे अधिकारों को छीन लेने के बाद वे दोनों दैत्य पार्वती के पास जाकर उनका आलिंगन करने का उद्यम करने लगे ।।

ज्ञात्वा समुद्यममिमं भगवान् महेशः,
कर्तुं वधं दितिजयोः सुविनिश्चिकाय ।
संकेतिता भगवती भगवत् शिवेन,
स्वात्कन्दुकात् दितिसुतौ किलतौ जघान ।।२१।।

भगवान् शिव ने अपनी शक्ति से उनके इस उपक्रम को जानकर उन दोनों दैत्यों के वध का निश्चय किया । उनका संकेत पाकर पार्वती ने अपनी गेंद से उन दोनों को मार दिया ।।

तस्मिन् दले च विदले च दिवं प्रयाते,
सर्वाः दिशश्च विदिशश्च परं प्रहृष्टाः ।
द्यौश्च पृथिव्यतितरां मुदमापतुस्ते,
गन्धर्वकिन्नरनराप्सरसस्तथैव ।।२२।।

दल और विदल के मारे जाने पर समस्त दिशाएँ, देवता, पृथ्वी, आकाश तथा गन्धर्व किन्नर आदि को अति सन्तोष एवं हर्ष हुआ ।।

सफलाः तरवश्चासन् सजलाश्च जलाशयाः ।
हतेषुतेषु दैत्येषु मुमुदुः सप्रजाः प्रजाः ।।२३।।

गजासुर और दल-विदल इन तीनों दैत्यों के मरने पर समस्त वृक्ष फलयुक्त, जलाशय जलयुक्त और प्रजा पुत्र पौत्रादि सहित अति प्रसन्न हो गये ।।

अहल्यासंगकरणाद् देवराजो दिवस्पतिः ।
ऋषिगोतमशापेन सहस्त्रव्रणवानभूत् ।।२४।।

स्वर्ग पति इन्द्र अहल्या से संगम करके गौतम के शाप से हजार व्रण वाला हो गया ॥

वृहस्पतेर्धर्मपत्न्याः ताराया: गृहरक्षणात् ।
राजा द्विजानां चन्द्रोपि कलङ्कसहितोऽभवत् ॥२५॥

वृहस्पति की स्त्री तारा को घर में रखने से चन्द्रमा कलंकित हो गया ॥

अश्वमेधशतं कृत्वा स्वर्गराट् समजायत ।
इन्द्राणीसंगमेच्छातो नहुषः स्वर्गतोऽपतत् ॥२६॥

सौ अश्वमेध यज्ञ द्वारा नहुप इन्द्र बनकर इन्द्राणी के साथ रमणेच्छा से दुर्वासा के शाप से स्वर्ग से गिर गया ॥

भस्मासुरोवरंप्राप्य पार्वतीसंगमेच्छया ।
शिवस्यहननेच्छातः स्वयं भस्माभवत्क्षणात् ॥२७॥

भस्मासुर ने शिव से वर मांग कर शिव को भस्म करना चाहा परन्तु विष्णुकृत उपाय से स्वयं भस्म हो गया ॥

शुंभासुरोमहावीरोदेवीरूपविमोहितः ।
रणं कृत्वा तया देव्या जगाम यमसद्मनि ॥२८॥

महावली शुंभासुर देवी पर मुग्ध होकर वलहीन हो युद्ध में देवी द्वारा मारा गया ॥

रावणश्च महाविद्वान् सीतासंगमनेच्छया ।
पूर्णब्रह्मरामहस्तात् रणेमृत्युमुपागतः ॥२६॥

महाविद्वान् रावण, सीता के साथ रमणेच्छा से रण में श्री राम द्वारा मारा गया । रावण जैसा विद्वान् तथा वलवान् आज तक दूसरा नहीं हुआ ॥

कनिष्ठभ्रातृसुग्रीवपत्न्याः स्व गृह रक्षणात् ।
वाली श्रीमद्रामहस्तात् जगाम यम वेश्मनि ॥३०॥

छोटे भाई सुग्रीव की स्त्री को घर में रखकर वाली श्री राम द्वारा मारा गया । 'अनुज वधू भगिनी सुत नारी, निज कन्या ये सम हैं चारी' ॥

देवर्षिर्नारदो यागी विरक्तो विजितेन्द्रियः ।
स्त्रियः संग्रहणेच्छातो हरेर्हरिमुखोऽभवत् ॥३१॥

जितेन्द्रिय भगवान् नारद स्त्री-ग्रहणेच्छा से विष्णु द्वारा वानर-मुख हो गये । 'हरिर्विष्णुश्चवानरः' (अमर कोष) ॥

वेदव्यासोपि भगवान् घृताच्चीरूपमोहितः ।
तस्याः संगमनेच्छातो रेतोऽरण्यामपातयत् ॥३२॥

सर्वज्ञ भगवान् व्यास भी घृताची अप्सरा को देखकर कामार्त हो गये और विवेक-शून्य होकर उन्होंने अरणी में ही वीर्य छोड़ दिया ॥

द्रौपदीसंगमेच्छातः कीचको नाम दानवः ।
युद्धं कृत्वा भीममुष्टया ताडितः सन्जहावसून् ॥३३॥

विराट् नगर में कीचक ने द्रौपदी के साथ रमणेच्छा से भीमसेन से युद्ध करके मृत्यु प्राप्त की ॥

भवितव्यवशादेषा मेतत्सर्वमजायत ।
तथापि यत्नः कर्तव्यः परस्त्रीसंगवर्जने ॥३४॥

यद्यपि दल-विदल इन्द्रादि को यह सब कुछ भवितव्यवश भोगना पड़ा, तथापि यथाशक्ति परस्त्री संगमेच्छा का त्याग कर देना चाहिये ॥

गतः चतुर्दशः सर्गो दितिजानां वधात्मकः।
चतुर्दश प्रबन्धानां भ्रातुश्चैतस्य काव्यस्य ॥३५॥

चौदह प्रबन्धों के भ्राता इस काव्य में असुरवधात्मक यह चौदहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
शिवद्वारादुन्दुभिवधात्मकः
चतुर्दशः सर्गः ॥

५॥
ौदहवां

अथ शिवावतारवर्णनात्मकः

पंचदशः सर्गः

—०—०—

यदा प्रजा ब्रह्मविनिर्मितापि
नचैधताल्पापि तदातिदुःखी।
वभूव तावन्नभसोथवाणी
ब्रह्मन् प्रजा मैथुनजा विधेहि ॥१॥

ब्रह्मा द्वारा मनोनिर्मित प्रजा में जब थोड़ी सी भी वृद्धि नहीं हुई तो वे दुःखित हो गये। इसी बीच आकाशवाणी हुई कि हे ब्रह्मन्! आप मैथुन से उत्पन्न होने वाली प्रजा की सृष्टि करें॥

शिवाच्च सर्वाः स्त्रिय आविरासन्
बिना कृपां तस्य न च स्त्रियः स्युः।
तपः स तेपे भगवच्छिवस्याऽ-
चिरेण कालेन तुतोष शम्भुः ॥२॥

शिव से ही समस्त स्त्रियां उत्पन्न हुई हैं। उनकी कृपा के बिना स्त्री हो ही नहीं सकती। ब्रह्मा ने बहुत समय तक शिव की उपासना की तब कहीं शिव उन पर प्रसन्न हुए॥

स चाह सर्वं विदितं ममास्ति
ब्रह्मन् ददाम्यद्य तवेप्सितं वै।
गृणीहि सम्यङ् समचार्ध भागं
शक्त्यात्मकं पार्वतिनामधेयम् ॥३॥

उन्होंने कहा कि मैं सब कुछ जानता हूं और जो तुम्हारा ईप्सित है

उसे प्रदान कर रहा हूं। यह कहकर उन्होंने अपनी अर्धाङ्गिनी शक्ति रूप पार्वती की स्तुति करने को कहा ।।

ब्रह्माऽवदद्देवि ददातु मह्यं
नारीकुलं सर्जयितुं स्वशक्तिम् ।
इतिस्तुता सा परमेष्ठिनाम्बा
शक्ति ददौ तां च पितामहाय ।।४।।

ब्रह्मा ने कहा कि देवी नारीकुल की रचना करने वाली अपनी शक्ति आप मुझे प्रदान कर दें। इस प्रकार ब्रह्मा द्वारा स्तुति किये जाने पर पार्वती ने अपनी शक्ति ब्रह्मा को प्रदान कर दी ।।

दत्त्वा द्वयोर्मैथुनजां च शक्ति
तिरोऽभवत् सापि महेश्वरेण ।
ततः प्रभृत्येव प्रकल्पितः स्त्री
पुंसोऽर्धभागो मिथुनात् प्रजापि ।।५।।

देवी ब्रह्मा को मैथुनजाशक्ति प्रदान करके शिव के साथ अन्तर्हित हो गई। तभी से स्त्री पुरुष का आधा भाग माना गया और प्रजा भी दोनों के मैथुन करने से ही उत्पन्न होने लगी ।।

शिवोऽयं वा शिवेयं वा उभौ वा यत्र विभ्रमः ।
तद्दिव्यमव्ययं धाम अर्धनारीश्वरात्मकम् ।।६।।

ये शिव हैं या पार्वती है अथवा जिसमें दोनों का ही विभ्रम होता है ऐसे अर्धनारीश्वरात्मक शरीर को हम नमस्कार करते हैं ।।

।। इत्यर्धनारीश्वरावतारः ।।

शिलादनामाथ मुनिः सुतार्थी
महेन्द्रमुद्दिश्य तपश्चचार ।

समेत्य शक्रस्त मवोचतर्षे
वरं वृणीष्व स्वमनोरथाय ॥७॥

पुत्र की कामना से शिलाद नामक मुनि ने इन्द्र की उपासना की। प्रसन्न होकर इन्द्र वहां आये और स्व-मनोरथ की पूर्ति करने वाले वर को मांगने के लिये कहा ॥

स चाह भो देव यदि प्रतुष्टः
त्वं मे सुतं देह्यजरामरं च।
शक्रोऽपि तंचाह शृणुष्व भद्र
न तादृशं दातुमहं समर्थः ॥८॥

शिलाद ने कहा कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो आप मुझे एक अजर एवं अमर पुत्र प्रदान करें। इन्द्र ने कहा कि मैं ऐसा पुत्र प्रदान करने में असमर्थ हूं ॥

शिवोऽस्ति शक्तः खलु तादृशस्य
पुत्रस्य दाने न विधिर्नविष्णुः।
गते तु तस्मिन् विफले महेन्द्रे
आराधयामास शिवं स विप्रः ॥९॥

ऐसा पुत्र प्रदान करने को न विष्णु और न ब्रह्मा ही समर्थ हैं। केवल शिव ही ऐसा पुत्र प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार कहकर महेन्द्र के चले जाने पर उस ब्राह्मण ने शिव की उपासना की ॥

यदास्थिशेषो भवतिस्म विप्रः
शम्भुस्तदैत्याह वरं वृणीष्व।
शिलाद आहस्मयदिप्रसन्नः
त्वतुल्यपुत्रं मम देहि देव ॥१०॥

जब तपस्या करते-करते वह अस्थि-शेष रह गया तो शिव ने

आकर वर माँगने के लिए कहा। शिलाद बोला कि यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे स्वतुल्य पुत्र प्रदान करें ॥

उवाच शम्भुस्तव नन्दिनाम्ना
सुतो भविष्यामि जगत्पिताहम्।
प्रसाद्य सम्यङ् मुनिमादरेण
गिरिं ययौ सोऽपि निजाश्रमं च ॥११॥

शिव ने कहा कि मैं नन्दि नाम से तुम्हारा पुत्र बनूंगा और इस प्रकार कहकर वे अपने स्थान को चले गये तथा मुनि भी अपने आश्रम को चले गये ॥

यदैकदाऽसौ मुनिराचकर्ष
यज्ञांगणं यज्ञकृते तदैकः।
युगान्तवह्नि प्रभवालकोऽभूत्
पपात खात्पुष्पयुता च वृष्टिः ॥१२॥

एक बार मुनि ने यज्ञ के निमित्त यज्ञाँगण को जोता। तब युगान्तकालीन वह्नि के समान तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ और नभ से पुष्प-वृष्टि हुई ॥

तदोत्सवो भूरि बभूव तत्र
शिवं च तं बालममन्यतर्षिः।
अतीव हृष्टः प्रजगाम धाम
स तेन बालेन च नन्दिनाम्ना ॥१३॥

उस समय वहाँ बहुत उत्सव हुआ और ऋषि ने उस बालक को शिवरूप ही माना तथा अत्यन्त प्रसन्न होकर वे उस नन्दिनामक बालक के साथ अपने स्थान को गये ॥

श्रुतीश्च सर्वा अधिगत्य नन्दी
स्मृतीश्च सर्वा विबुधो बभूव।

निपीय शम्भोश्च कथाः समग्राः
तथादरं नो कृतवान् सुधायाम् ॥१४॥

नन्दी समस्त श्रुति एवं स्मृतियों को पढ़कर विद्वान हो गये तथा शिव की समस्त कथाओं को सुनकर उन्हें अमृत में भी रुचि नहीं रही ॥

स्वस्मात् गृहात् एत्य तपस्ततान
सुरासुरैर्दुष्करमाशुतोषः ।
समीपमागत्य तमाह नन्दिन्
वरं वृणोष्वाद्य यदीप्सितं ते ॥१५॥

अपने घर से जाकर उन्होंने ऐसा तप किया जो देवताओं और असुरों के लिए भी दुष्कर था। तब शिव ने उनके पास आकर कहा कि जिस वर की तुम्हें कामना है उसे तुम मांग लो ॥

रात्रिःशिवासीत्खलुतद्दिनेसा
सालोक्यदा या भगवच्छिवस्य ।
व्यधाच्चतुर्धा निशि पूजनं सः
सर्वोपचारैः शिव आतुतोष ॥१६॥

जिस दिन भगवद्दर्शन हुए उस दिन शिवरात्रि थी। नन्दी ने षोडशोपचारों से रात्रि में चार बार शिव-पूजन किया। भगवान् बड़े प्रसन्न हुए ॥

स चाह चेन्मे व्रततोऽसि तुष्टः
स्वपादभक्तं कुरु मां वरोऽयम् ।
तथास्तु उक्त्वा स्वगणेश्वरं तं
चकार सर्वानुमतं महेशः ॥१७॥

नन्दी ने कहा कि—हे भगवन्, आप मुझे अपने चरणों का भक्त बना

लें, यही मेरी इच्छा है। तथास्तु कहकर शिव ने उनको अपना गणेश्वर बना लिया॥

यदैव यत्राहमधिष्ठितः स्यां
त्वमप्यधिधिष्ठान कृदेधि तत्र।
इति प्रकथ्यैव तिरोभवत् सः
नन्दी च सर्वेऽपि यथा तथायुः॥१८॥

जहां मैं रहूँगा उसी स्थान पर तुम भी निवास करना, यह कहकर वे अन्तर्हित हो गये तथा नन्दी एवं अन्य समस्त जन जैसे आये थे वैसे ही चले गये॥

॥ इति नन्द्यवतारः॥

त्रिष्वेकदाश्रीलपितामहादि-
देवेषु भूयानभवद् विवादः।
अस्मासु कः श्रेष्ठतरो हि देवः
कर्ता च हर्ता च जगत्पतिश्च॥१९॥

एक बार पितामहादि तीनों देवों में यह विवाद हुआ कि हम सब में कौन श्रेष्ठ है और कौन इस संसार को बनाने वाला, इसका संहार करने वाला और इसका स्वामी है॥

प्रमाणभूतेषु चतुर्षु तेषु
वेदेषु पृष्टेषु च तैरगादि।
शिवो हि साक्षात् परमः परात्मा-
कर्ता च हर्ता च जगत्पतिश्च॥२०॥

प्रमाणभूत चारों वेदों से जब पूछा गया तो उन्होंने कहा कि शिव ही साक्षात् परमात्मा हैं, पालन करने वाले हैं, संहार करने वाले हैं और जगत्पति हैं॥

विधिश्च विष्णुश्च ततोति रुष्टा-
ववोचतां तांश्चतुरोपि वेदान्।
युष्माभिरेष क्रियतेस्म पक्ष-
पातो महेशस्य गुणानुवादात् ॥२०॥

तब ब्रह्मा और विष्णु ने अति रुष्ट होकर कहा कि हे वेदो, महेश का गुणगान करके तुम उनका पक्षपात कर रहे हो ॥

ब्रह्माह चाहं स्थिर मस्थिरं च,
करोमि लोकं परिपाति विष्णुः।
कथं तदैतत्कथनं हि तथ्यं
कर्ता च हर्ता च पतिश्चशम्भुः ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा कि मैं इस स्थावरजङ्गम सृष्टि को बनाता हूं तथा विष्णु इसका पालन करते हैं। फिर यह कथन कैसे सत्य हो सकता है कि शिव ही इस लोक का पालन करने वाले, संहार करने वाले तथा इसके स्वामी हैं ॥

ततो विधिश्चाथ च विष्णुदेवः
ओंकारमेनं परिपृच्छतः स्म।
सोप्याह सत्यं भगवान् महेशः
कर्ता च हर्ता च जगत्पतिश्च ॥२२॥

तब ब्रह्मा और विष्णु ने ओंकार से पूछा तो उसने भी कहा कि शिव ही इस संसार को बनाने वाले, इसका संहार करने वाले तथा इसके स्वामी हैं ॥

विधिश्च विष्णुश्च प्रबोधितौहि
न बोधमाप्तां तु कथंचनापि।
उद्दिश्य रुद्रं स विधिस्तमाह
पुत्र त्वमागच्छ मदीयपार्श्वे ॥२३॥

बहुत समझाये जाने पर भी विष्णु एवं ब्रह्मा इस को नहीं समझ सके। तब ब्रह्मा ने रूद्र से कहा कि हे पुत्र ! तुम मेरे पास आओ ॥

प्रकुप्य रुद्रः पुरुषं तदैकं
निर्माय तं भैरवमाजुहाव।
कालोऽपि देवो यत आविभेति
तथा भवत्वं किल कालभैरवः ॥२५॥

तब रूद्र ने कुपित होकर एक पुरुष को उत्पन्न किया और उसको भैरव नाम से पुकारा और कहा कि चूंकि तुम्हारे से काल भी भयभीत रहेगा, अतः तुम्हारा नाम कालभैरव हो ॥

पुर्यां तु काश्यां च तवाधिपत्यं
सदा भवेद् भैरव मेऽवतार।
इत्थं वरं प्राप्य नखाग्रभागात्
विधेर्विभेदाशु स पंचमं शिरः ॥२६॥

हे भैरव, तुम मेरे अवतार हो और तुम सदैव ही काशी में निवास करोगे। इस प्रकार वर प्राप्त करके भैरव ने अपने नखाग्रभाग से ब्रह्मा के पांचवें मस्तक को काट डाला ॥

गताभिमानः स पितामहस्तु
तुष्टाव देवं सहसाशिवं च।
तमाह शम्भुर्विधिमेवमेतं
क्षमस्व चास्मै ननु दुष्कृताय ॥२७॥

इस प्रकार अभिमान दूर हो जाने पर पितामह ने शिव की स्तुति की। शिव ने कहा कि हे ब्रह्मन्, आप भी भैरव के इस दुष्टकृत्य को क्षमा कर दें ॥

कपालभिक्षां चर भैरव त्वं
यावन्न हत्या प्रविमोक्ष्यति त्वाम् ।
सर्वेषु लोकेषु चचार सोऽपि
भिक्षां चरन् नैव मुमोच सा तम् ॥२८॥

जब तक इस हत्या से तुम्हारा छुटकारा न हो जावे; हे भैरव, तुम कपाल लेकर भिक्षा माँगा करो। इस प्रकार भैरव समस्त लोकों में भिक्षा की याचना करते हुए घूमे, किन्तु हत्या ने उन्हें नहीं छोड़ा ॥

चरंश्च भिक्षां स कपालपाणिः
यदा ययौ काशिपुरे वरेऽत्र ।
पपात हस्तात्तु विधेः कपालं
मुमोच तं भैरवमाशु हत्या ॥२९॥

कपाल हाथ में लिये जब वे काशी पहुंचे तो सहसा ही ब्रह्मा का वह कपाल उनके हाथ से गिर गया और हत्या ने भी भैरव को मुक्त कर दिया ॥

ततः प्रभृत्येव च तीर्थमेतद्
बभूव नाम्नापि कपालमोचम् ।
काश्यां तयोर्यो न करोति दर्शनं
न काशिवासस्य फलं लभेत ॥३०॥

तब से ही यह तीर्थ कपालमोचन नाम से प्रसिद्ध हुआ। काशी में जाकर जो इन दोनों का दर्शन नहीं करता है उसको काशीवास का फल नहीं मिलता है ॥

॥ इति भैरवावतारः ॥

पुरारिभक्तः किल नर्मदाया
तटे सुधर्माख्यपुरे बभूव ।

विश्वानरो विप्रवरो महात्मा
शाण्डिल्यगोत्रश्च पवित्रमूर्तिः ।।३१।।

नर्मदा तट पर स्थित सुधर्म नामक नगर में विश्वानर नामक एक शिव-भक्त ब्राह्मण रहता था। वह शाण्डिल्य गोत्री था ।।

एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्त
सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किंचित् ।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे
तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ।।

कर्ता भर्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो,
नानारूपोप्येकरूपोप्यरूपः ।
यद्वत्प्रत्यम्वर्क एकोप्यनेकः
तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये ।।

रज्जौसर्पः शुक्तिकायां च रूप्यं
नैरः पूरः तन्मृगाख्ये मरीचौ ।
यत् यत् तत्तद् विश्वमेष प्रपञ्चो
यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम् ।।

तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ
तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः ।
पुष्पे गन्धो दुग्धमध्ये च सर्पिः
यत्त्वं शम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये ।।

शब्दं गृह्णास्यश्रवाः त्वं हि जिघ्र
स्यघ्राणस्त्वं व्यंघ्रिरायासिदूरात् ।
व्यक्षः पश्येः त्वं रसज्ञोप्यजिह्वः
कस्त्वां सम्यग् वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये ।।

नो वेदत्वामीशसाक्षाद्धि वेदः
नो वा विष्णुर्नो विधाताऽखिलस्य।
नोयोगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवाः
भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये॥

नोतेगोत्रं नो सजन्मापि नाख्या
नो वा रूपं नैवशीलं न देशः।
इत्थम्भूतोपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः
सर्वान्कामान्पूरयेः तद्भजे त्वाम्॥

त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे
त्वं गौरीशः त्वं च नग्नोतिशान्तः।
त्वं वै वृद्धः त्वं युवा त्वं च बालः
तत् किं यत्त्वं नान्यतस्त्वां नतोऽहम्॥

धन्यः स विश्वनर अष्टपदीप्रणेता
ईशोपि यद्रचनया चकितोवभूव।
स्वप्ने समेत्य भगवान् शिव आह तस्मै
यस्मै वराय तव कान्तिरमुं वृणीष्व॥३१॥

अष्टपदी प्रणेता महात्मा विश्वानर धन्यवादार्ह है, जिसकी कविता को सुनकर तथा स्वप्न में आकर शिव ने उसको वरदान लेने को कहा॥

पूर्वोक्त पद्यैः स सशंस शम्भुम्
पुत्रार्थमीशः प्रकटीवभूव।
वरं वृणीष्वेति वचो निशम्य
तत्तुल्य पुत्रं शिवतो ययाचे॥३१॥

उन्होंने पुत्र की कामना से सुन्दर आठ पद्यों द्वारा शिव की स्तुति की। प्रसन्न होकर शिव ने उनसे वर मांगने को कहा। यह सुनकर उन्होंने शिव के सदृश एक पुत्र की याचना की॥

तथेति चोक्त्वा समये महेशः
शुचिष्मतीगर्भत आविरासीत् ।
स द्वादशाब्दः खलु नारदोक्त्या
तपश्चचाराद्भुतमद्रिभागे ॥३४॥

समय आने पर शिव ने शुचिष्मती के गर्भ से जन्म लिया । बारह वर्ष की अवस्था होने पर नारद जी के कहने पर वह अद्रिभाग में तप करने के लिये चला गया ॥

तमिन्द्रमाहस्म वरं वृणीष्व
यदीप्सितं बालक दिव्यधामन् ।
स चाह शक्रं शृणु देववर्य
नचास्ति मे ते वरदान शक्तिः ॥३५॥

तब इन्द्र ने आकर उस तेजस्वी बालक से ईप्सित वर माँगने के लिये कहा । यह सुनकर उसने कहा कि मुझे वर देने की शक्ति आप में नहीं है ॥

क्रुद्धस्तमैच्छत् कुलिशेन हन्तुं
बाहुप्रतिष्टम्भनमास तस्य ।
तदैवकाले ह्यभवन्नभोवाक्
महेन्द्र एष स्वयमस्ति शम्भुः ॥३६॥

यह सुनकर जब इन्द्र ने वज्र से उसे मारना चाहा तो उसका हाथ स्तम्भित हो गया । उस समय आकाशवाणी हुई कि हे इन्द्र, यह तो स्वयं शिव ही हैं ॥

तया तु वाण्या प्रतिबोधितस्तं
स्तुत्वा प्रसाद्यान्तरधान्महेन्द्रः ।
बालोऽपि शम्भोरजरामरं च
वरं समादाय गृहं जगाम ॥३७॥

आकाशवाणी सुनकर इन्द्र ने स्तुति द्वारा बालक को प्रसन्न किया। वह बालक भी शिव से अजरामरत्व का वर पाकर अपने घर गया ॥

॥ इत्यर्थपत्यवतारः ॥

पुरा सुराश्चाथ सुरारयश्च
एकत्र सर्वे मिलिता विचार्य।
क्षीरोदधेर्मन्थनमाश्वकुर्वन्
मृत्योर्जरायाश्चविनाशनाय ॥३८॥

एक बार देवताओं और असुरों ने मिलकर विचार करके मृत्यु एवं जरा को नष्ट करने के लिये सागर का मन्थन किया ॥

जातां ततः श्रीमथ कौस्तुभं च
जग्राह विष्णुर्हयमर्कदेवः।
ऐरावतं हस्तिनमिन्द्र आप्नोत्
मुनीश्वरास्तामथ कामधेनुम् ॥३९॥

उस मन्थन के फलस्वरूप विष्णु को लक्ष्मी और कौस्तुभ की प्राप्ति हुई, सूर्य को अश्व की प्राप्ति हुई, इन्द्र को ऐरावत हाथी और मुनियों को कामधेनु मिली ॥

दैत्याः सुराख्याँ रमणीं गृहीत्वा
प्रसन्नतामापुरभूतपूर्वाम् ।
अन्याश्च नारीरमृतप्रसूताः
आयुश्च ता अप्यति मोहिताश्च ॥४०॥

दैत्य सुरा नामक रमणी को प्राप्त करके अति प्रसन्न हुए तथा उन्होंने अमृत से उत्पन्न नारियों को भी प्राप्त किया। वे नारियां भी दैत्यों को देखकर मुग्ध हो गईं ॥

बभूव युद्धं ह्यमृताय तेषां
सुरासुराणामथ विष्णुदेवः ।
स्वरूपमास्थाय च मोहिनीति
अमोहयत्तानसुरान् समस्तान् ॥४१॥

देवताओं तथा असुरों के वीच अमृत के लिये युद्ध हुआ तो विष्णु ने मोहिनी रूप धारण करके समस्त असुरों को मोहित कर लिया ॥

अपाययत् सोऽमृतमाशु देवान्
ततश्च घोरः समरः प्रवृत्तः ।
तथामराणां विजयो बभूव
पातालमीयुर्दनुजाः सजायाः ॥४२॥

विष्णु ने जल्दी से देवताओं को अमृत पिला दिया । इसी कारण देवताओं और दैत्यों में घोर युद्ध हुआ । उस युद्ध में देवताओं की विजय हुई और दैत्य स्त्रियों सहित पाताल में चले गये ॥

विष्णुः स्वरूपं परिवर्त्य तेषां
पश्चात्तु पातालमवाप सोऽपि ।
तेषां कलत्रैः सुविमोहितः सन्
पुत्रांश्च तेभ्यो जनयाम्बभूव ॥४३॥

अपना स्वरूप बदल कर विष्णु भी उनके पीछे पीछे पाताल में चले गये । वहां उनकी स्त्रियों में आसक्त हो जाने पर उन्होंने पुत्रों को उत्पन्न किया ॥

ततश्च ते विष्णुसुताः बलिष्ठाः
उपद्रवं चक्रु रुपेत्य भूमौ ।
सुराश्च सर्वे परमेष्ठिकाद्याः
कैलासमासाद्य शिवं प्रणेमुः ॥४४॥

विष्णु के उन बलिष्ठ पुत्रों ने भूमि पर आकर उपद्रव करना शुरू कर दिया। यह देखकर ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं ने कैलाश जाकर शिव से निवेदन किया ॥

हे देव देवान् सकलान् प्रारक्ष
पातालवासीनसुतैर्विखिन्नान् ।
निशम्य वाचं त्रिपुरारिरीशो
वृषस्वरूपो विवरं विवेश ॥४४॥

हे देव, आप विष्णु के पातालवासी पुत्रों से हमारी रक्षा करो। यह सुनकर शिव ने वृष रूप धारण करके पाताल में प्रवेश किया ॥

चक्रे वृषो भैरवनादमाशु
गताश्च पुत्राः सहसा वृषान्ते।
स रुद्ररूपो वृषभस्तदातान्
पुत्रान् स्वशृङ्गैर्विददार विष्णोः ॥४५॥

तब उस रूद्र रूप वृषभ ने अपने सींगों से उन विष्णु-पुत्रों को फाड़ डाला ॥

विष्णो त्वयापि खलु न स्थितिरत्रकार्या
गच्छ स्वलोकमधुना सह देवसंघैः।
श्रीमान् शिवोऽपि सकलं खलु देवकार्यं
संम्पाद्य नैजनिलयं त्वरया ह्ययासीत् ॥४६॥

हे विष्णो, अब तुम भी यहां न ठहरो और देवताओं के साथ अपने स्थान को जाओ। शिव भी समस्त देवकार्यों को पूरा करके अपने स्थान को चले गये ॥

गतः पंचदशः सर्गोऽवतारचरितात्मकः ।
चतुर्दशप्रबन्धानां भ्रातुश्चैतस्य काव्यस्य ।।४७।।

चौदह ग्रन्थों के भ्राता इस काव्य में अवतार चरित्र का वर्जन करने वाला यह पन्द्रहवां सर्ग समाप्त हुआ ।।

।। इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
शिवावतारवर्णनात्मकः
पंचदशः सर्गः ।।

अथ शिवावतारवर्णनात्मकः

षोडशः सर्गः

—०—०—

अथैकदा ब्रह्मसुतः स चात्रिः
तपश्चचाराति सुतस्य हेतोः।
गते तु काले बहुले तपस्तो
ज्वालाशुचेरास महीयसी वै ॥१॥

एक बार ब्रह्मपुत्र अत्रि ने पुत्र की कामना से घोर तप किया। बहुत समय बीत जाने पर उस तप के प्रभाव से अग्नि की एक विशाल ज्वाला उत्पन्न हुई ॥

तया च सर्वं भुवनं प्रदग्ध-
प्रायं बभूवाति सुराश्च खिन्नाः।
गत्वाखिलास्ते खलु वासवाद्याः
निवेदयांचक्रुरथात्मयोनिम् ॥२॥

उस अग्नि से समस्त संसार दग्धप्राय ही हो गया और देवताओं को इससे बहुत खेद हुआ। अतः इन्द्रादि समस्त देवताओं ने जाकर ब्रह्मा से निवेदन किया ॥

ततस्तु वेधाश्च हरिश्च देवाः
सवासवाद्याश्च शिवस्य पार्श्वे।
गत्वा स्वकीयं सकलन्तु दुःख-
मत्रेः तपस्योद्भवमब्रुवंस्ते ॥३॥

तब ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्रादि समस्त देवताओं ने शिव के पास जाकर अत्रि मुनि की तपस्या के कारण हुए दुःख का उनसे निवेदन किया ॥

निशम्य वेधाश्च हरिर्हरश्च
त्रयो मिलित्वा वरदर्षभास्ते ।
गत्वाश्रमं ब्रह्मसुतस्य चात्रेः
वरं वृणीष्वेति तमाहुरत्रिम् ॥४॥

यह सुनकर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तीनों मिलकर ब्रह्मपुत्र अत्रि के आश्रम में गये और उसको वर मांगने के लिये कहा ॥

तान् ब्रह्मविष्ण्वीश्वरनामधेयान्
कृत्वाक्षिलक्षी विबुधानपि त्रीन् ।
महर्षिरत्रिः प्रणिपत्य चाह
एको मया ध्यात इह त्रयोपि ॥५॥

ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव इन तीनों देवों को आया देखकर अत्रि मुनि ने प्रणाम करके कहा कि मैंने तो एक की ही आराधना की थी, किन्तु यहां तो तीनों ही उपस्थित हो गये हैं ॥

ऊचुर्महर्षेर्वचनं निशम्य
संकल्प ईदृक् तव चित्त आसीत् ।
ततोवयं ते वरदानयोग्याः
त्रयो मिलित्वा तवपार्श्वं ईयुः ॥६॥

महर्षि के वचन सुनकर उन्होंने कहा कि तुम्हारे चित्त में ऐसा ही संकल्प था, अतः हम तीनों ही मिलकर तुम्हारे पास आये हैं ॥

देवाविसर्गो न च रोचते मे
स्वल्पा प्रजा सद्मनि सौख्यहेतुः ।

बहुप्रियो विन्दति भूरिकष्टम्
बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश ॥७॥

हे त्रिदेव, अधिक सृष्टि मुझे पसन्द नहीं, क्योंकि घर में थोड़ी सन्तान ही सुख का कारण होती है। वहुत विवाह करने वाला दुःख भोगता है और वहुत सन्तति वाला भी। (यहां कवि ने परिवार नियोजन ध्वनित किया है) ॥

अस्माकमंशैस्तु तवर्षिवर्य
त्रयो भविष्यन्ति सुता उदात्ताः।
लोकेषु सर्वेषु प्रसिद्धिभाजः
पित्रोर्द्वयोः कीर्तिविवर्धनाश्च ॥८॥

हमारे अंशों से तुम्हारे तीन श्रेष्ठ पुत्र होंगे जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध होंगे तथा माता-पिता दोनों की कीर्ति वढ़ाने वाले होंगे ॥

इत्येव मुक्त्वा प्रययुस्त्रयोपि
देवाः स्वधामातिप्रहृष्टचित्ताः।
विधेरथांशात् विधुरास विष्णो-
र्दत्तः सुवासाः शिवतोंऽशतोभूत् ॥९॥

यह कहकर वे तीनों प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थान को चले गये। ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा, विष्णु के अंश से दत्तात्रेय तथा शिव के अंश से दुर्वासा उत्पन्न हुए ॥

सचैकदा पृथ्विपमम्बरीषं
तस्यापराधात्तमु दण्डमैच्छत्।
दुर्वाससं चक्रसुदर्शनं च
तदानभोवाण्यवदन्नरेशम् ॥१०॥

दुर्वासा ने एक वार अम्वरीष नामक राजा को उसके अपराध के कारण भस्म कर देना चाहा। तब सुदर्शन चक्र ने दुर्वासा को भस्म कर देना चाहा। तभी आकाशवाणी ने राजा से कहा॥

पृथ्वीपते शम्भववतार एष
महर्षिवर्यो ननु संहरस्व।
सुदर्शनंचक्रमिदं तथा त्वं
प्रयाहि चैतच्छरणं स्वशान्त्यै ॥११॥

हे राजन्! ये महर्षि शिव के अवतार हैं अतः तुम इस सुदर्शन चक्र को वापिस ले लो और अपनी शांति के लिये इनकी शरण में जाओ॥

शिवावतारं नृपतिर्विदित्वा
दुर्वाससं नाम तपोनिधिं तम्।
क्षमापयामासनिजापराधं
हृष्टो मुनिः स्वालयमाजगाम ॥१२॥

दुर्वासा मुनि को शिव का अवतार जानकर राजा ने चरणों में गिरकर क्षमा मांग ली और मुनि भी प्रसन्न होकर अपने स्थान को चले गये॥

द्वौ हंसडिम्भौ नृपती जघान
वरं च प्रादात् द्रुपदात्मजायै।
उद्धारयामास बहून्प्रबोध्य
सचात्रिपुत्रो जयताच्छिवांशः ॥१३॥

अत्रिपुत्र और शिव के अंश-भूत जिस दुर्वासा ऋषि ने हंस तथा डिम्भ नामक राजाओं को नष्ट किया तथा द्रौपदी को वर दिया, और अनेकों को प्रबोधित करके उनका उद्धार किया, उस दुर्वासा ऋषि की जय हो॥

॥ इति दुर्वासावतारः ॥

अथैकदा शम्भुरवालुलोके
तन्मोहिनीरूपमतीवदिव्यम् ।
कामस्य बाणैर्निहतः स्ववीर्य
मपातयद् भूमितले महात्मा ॥१४॥

एक बार शिव ने एक दिव्य मोहिनी रूप देखा। कामाहत होने पर उन्होंने अपने वीर्य को पृथ्वी पर गिरा दिया।॥

सप्तर्षयस्तत्खलु शम्भुवीर्यं
पत्रे गृहीत्वा श्रुतितोऽञ्जनीति ।
स्त्रियश्च गर्भे निहितं व्यधुस्ते
तस्मात् हनूमानितिसंबभूव ॥१५॥

सप्तर्षियों ने शिव के उस वीर्य को पत्तों में इकट्ठा करके अञ्जनी नामक स्त्री के गर्भ में स्थापित कर दिया, जिससे हनुमान उत्पन्न हुए ॥

सचातिवीर्यात् स्वशिशुत्वकाले
बिम्बं रवेराद फलस्य बुध्या ।
तं देवताप्रार्थनया मुमोच
पपाठ तस्माच्च समस्तविद्याः ॥१६॥

हनुमान् ने बाल्यकाल में फल समझ कर सूर्य के बिम्ब को ही खा लिया जिसे उन्होंने देवताओं द्वारा प्रार्थना किये जाने पर ही छोड़ा तथा उन्हीं से समस्त विधाएँ सीखीं ॥

सोऽयं महेशोऽवततार राम-
कार्यस्य हेतोरभवत्कपीन्द्रः ।
संप्रेषितो रामनृपेण लंकां
सीतासमाचारसमाननाय ॥१७॥

श्रीराम के कार्य हेतु शिव ने ही कपीन्द्र के रूप में अवतार लिया जिन्हें राम ने सीता का समाचार लाने के लिये लंका भेजा था ॥

शान्ताकारं वचसिमधुरं श्रीहनूमत्सुसेव्यम्
कौशल्यागर्भजातं दशरथतनुजं श्यामलं कोमलं च।
सीताकान्तं मुनिजनहितं लक्ष्मणाद्यैः समेतं
वन्दे रामं दशमुखरिपुं सर्वलोकाभिरामम् ॥१८॥

न च गंगास्ति नदी नदी यथा
न च रामोपि च मानवोयथा।
न च कामधुगस्ति गौर्यथा
न हनूमानपि वानरस्तथा ॥१९॥

शान्ताकार मधुरभाषी हनुमान् के स्वामी कौशल्या-दशरथ के पुत्र श्यामवर्ण, कोमलाङ्ग सीतापति लक्ष्मणादि सहित रावणशत्रु और सर्वसुन्दर श्रीराम को प्रणाम हो। जैसे गङ्गा सामान्य नदी नहीं, श्रीराम सामान्य मानव नहीं और कामधेनु सामान्य गौ नहीं। इसी प्रकार श्री हनुमान जी सामान्य वानर नहीं ॥

सेतोश्च बन्धं कृतबान्महाब्धेः
नीलादिभिस्तैः सहितः कपीन्द्रः।
जयेच्छया तत्र शिवस्य लिंगं
प्रातिष्ठिपत् रामकराब्जतः सः ॥२०॥

नीलादि वानरों के साथ मिलकर हनुमान ने समुद्र पर पुल बांधा तथा विजय की इच्छा से स्वयं राम ने शिव के लिंग की स्थापना की ॥

तस्यैव लिंगस्य वरेण तीर्त्वा
महोदधिं प्राप्य जयं च तत्र।
शक्त्याक्षतं लक्ष्मणमाशु यो वै
संजीवनीतोऽकृत जीवितं तम् ॥२१॥

उस शिवलिंग के वर के प्रभाव से ही हनुमान ने समुद्र पार किया और वहां विजय प्राप्त की। शक्ति से आहत लक्ष्मण को संजीवनी के प्रभाव से पुनः जीवित किया॥

स रावणं चाप्यतिदारुणं च
समूलमुन्मूल्य सरामसैन्यः।
संस्थापयामास भुवस्तलेऽस्मिन्
श्रीरामभक्ति निजभक्तिशक्त्या॥२२॥

हनुमान ने अति दारुण रावण को समूल नष्ट करके अपनी भक्ति के प्रताप से इस संसार में श्रीराम भक्ति को स्थापित किया॥

श्रीराम आहस्म सखे कपीन्द्र
नो ते ऋणं दातुमहं समर्थः।
विधेश्च विष्णोश्च शिवस्य कीर्तिः
लोकेस्ति या सैव तवापिचास्तु॥२३॥

श्रीराम बोले, हे सखे कपीन्द्र हनुमन्! मैं तुम्हारा ऋण नहीं चुका सकता। तुम्हारी कीर्ति त्रिदेववत् लोक में रहे॥

॥ इति श्रीशिवस्य हनूमदवतारः॥

बृहस्पतेर्देवगुरोरथांशात्
मुनेर्भरद्वाजत आविरासीत्।
अयोनिजो द्रोण इति प्रसिद्धः
सर्वास्त्रवेत्ता च धनुर्धरश्च॥२४॥

देवगुरु बृहस्पति के अंश से भरद्वाज मुनि द्वारा समस्त अस्त्रों के वेत्ता एवं धनुर्धर अयोनिज द्रोण की उत्पत्ति हुई॥

सहायतार्थं च स कौरवाणां
पुत्रस्य प्राप्त्यै तप आततान।
उद्दिश्य शम्भुं परमेश्वरं हि
द्रोणो महर्षिर्जगति प्रसिद्धः ॥२५॥

कौरवों की सहायता के हेतु द्रोण ने पुत्र-प्राप्ति के लिये शिव की आराधना की। ('आरोग्यं भास्करादि च्छेतनुत्रविच्छेद् शिवात्प्रभो:') ॥

तपः प्रसन्नो भगवान् महेशः
आविर्बभूवाथ ततः पुरस्तात्।
वरं वृणीष्वेति तमाह विप्रं
स चाह मे देहि निजांशपुत्रम् ॥२६॥

तप से प्रसन्न होकर शिव उनके सामने प्रकट हुए और वर मांगने को कहा। उन्होंने कहा कि आप मुझे अपना अंश-जात पुत्र प्रदान करें॥

तं शंकरः प्रोच्य तथास्तु वाच-
मन्तर्दधे भक्तवरैकवश्यः।
द्रोणोऽपि चागत्य निजाश्रमं सः
सर्वं स्वपत्न्यै कथयांबभूव ॥२७॥

तथास्तु कहकर शंकर अन्तर्धान हो गये। द्रोण ने भी अपने आश्रम में आकर सब वृत्तान्त अपनी पत्नी को सुनाया॥

शम्भोरथांशेन सुतो बभूव
प्राप्तेऽथ काले खलु तन्महर्षेः।
वीरेषु चाग्र्यः परपक्षभेत्ता
नाम्नाश्वथामेतिजगत्प्रसिद्धः ॥२८॥

समय आने पर महर्षि के यहां शिव का एक अंशभूत-पुत्र उत्पन्न हुआ जो वीरों में अग्रणी और परपक्ष का भेदन करने वाला था और जो अश्वत्थामा नाम से प्रसिद्ध हुआ॥

यं वीरमाश्रित्य च कौरवास्तो
भीष्मादयो गर्वयुता बभूवुः ।
यस्यैव भीत्या परमेश्वरांश-
जातस्य भीमादिरतप्यतस्म ॥२९॥

अश्वत्थामा का आश्रय लेकर भीष्मादि कौरव गर्वयुक्त हो गये और जिसके कारण भीमादि भी चिन्तित रहते थे ॥

अथैकदा पुत्रशुचातिखिन्नः
वीरार्जुनस्तद् ग्रहणार्थमैच्छत् ।
सचार्जुनं तं प्रविलोक्य ब्रह्म-
शिरोस्त्रमस्मावसृजत्तदैव ॥३०॥

एक वार पुत्रशोक से विह्वल होकर अर्जुन अश्वत्थामा की ओर दौड़ा और अश्वत्थामा ने अर्जुन पर ब्रह्मशिर नामक अस्त्र का प्रयोग किया ॥

प्रचण्डतेजः प्रसृतं समन्ताद्
दृष्ट्वार्जुनस्तत्परितापमाप ।
कृष्णस्तदैवाह भयं न कार्यं
शैवास्त्रतः तेज इदं जहीहि ॥३१॥

तव सभी ओर प्रचण्ड तेज फैल गया जिसे देखकर अर्जुन को वहुत खेद हुआ । कृष्ण ने कहा कि इसे देखकर भयभीत न हो और शैवास्त्र के प्रयोग से इस तेज को नष्ट कर दो ॥

तथैव कृत्वा स च पाण्डवस्तं
चकार भीतं मरणादतीव ।
द्रौपद्यथोऽमोचयत स्वभक्त्या
मत्वा गुरोः पुत्र मथापि दुष्टम् ॥३२॥

अर्जुन ने वैसा ही किया और उस अस्त्र से अश्वथामा को भयभीत कर दिया। तब द्रौपदी ने दुष्ट होने पर भी गुरु-पुत्र मानकर श्रद्धा के कारण उसे छुड़वा यिया ॥

अथाश्वथामा सकलं जगद्वै
अपाण्डवं कर्तुमियेष रुष्टः।
उद्दिश्य गर्भं त्वभिमन्युपत्न्याः
चिक्षेप शस्त्रं सहसा निकृष्टः ॥३३॥

तब अश्वत्थामा ने क्रुद्ध होकर समस्त विश्व को पाण्डवहीन करने का विचार किया और उस शस्त्र को अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्द पर छोड़ दिया ॥

सा तेन शस्त्रेण प्रदह्यमाना
तुष्टाव कृष्णं स ररक्ष गर्भम्।
ततः प्रभृत्येव प्रसिद्धमेतत्
स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥३४॥

उस शस्त्र की अग्नि से पीडित होकर उत्तरा ने कृष्ण की स्तुति की और कृष्ण ने गर्भ की रक्षा की। तब से ही यह प्रसिद्ध है कि जो गर्भ में रक्षा करता है वही रक्षक है ॥

ततः स कृष्णः सकलांश्च पाण्डून्
तत्पादयोः पातितवान् क्षमार्थम्।
द्रौणिः प्रसन्नो भवतिस्म पश्चात्
वरान् ददौ पाण्डुसुतार्थ मिष्टान् ॥३५॥

तब कृष्ण ने समस्त पाण्डवों से क्षमा प्राप्त करने के लिये अश्वत्थामा के चरणों में प्रणाम करवाया। उसने भी प्रसन्न होकर पाण्डवों को पुत्र प्राप्त्यर्थ का आशीर्वाद दिया ॥

॥ इति शिवस्याऽश्वत्थामावतारः ॥

अथैकदाभिल्लवरेण साकं
शिवस्वरूपेण बभूव युद्धम् ।
वीरार्जुनस्याप्रतिमं तदा तौ
कृत्वा प्रहारं श्रममापतुः स्म ॥३६॥

एक बार भिल्लरूप भगवान् शिव से अर्जुन का अपूर्व युद्ध हुआ । तब एक-दूसरे पर प्रहार करने के कारण दोनों ही थक गये ॥

शिवेन गत्वा गगने कृतं तद्
वीरार्जुनेनापि तथैव चक्रे ।
उड्डीय चोड्डीय समस्त देवाः
रणं तु तं वीक्ष्य बभूवुरार्ताः ॥३७॥

जब शिव ने आकाश में जाकर युद्ध किया तो अर्जुन भी आकाश में उड़कर युद्ध करने लगा । ऐसे युद्ध को देखकर देवता भयभीत हो गये ॥

शिवपृथासुतमुष्टिकृतोध्वनिः
प्रतिननाद गुहासु गिरेरपि ।
शिवभुजाहतिजन्यमहाव्रणाद्
नच रणाद् विमुखोऽभवदर्जुनः ॥३८॥

शिव और अर्जुन के मुष्टि प्रहारों की ध्वनि गिरिकन्दराओं में गूंजने लगी । शिव की भुजा के प्रहार से उत्पन्न व्रण से भी अर्जुन रण से विमुख नहीं हुए ॥

उत्थाप्य पादौ भगवच्छिवस्य
भिल्लस्वरूपस्य स पाण्डवोऽपि ।
संभ्रामयामास तवातिवेगाद्
भिल्लस्वरूपो भगवाञ्जहास ॥३९॥

भिल्लरूप भगवान शिव के पैरों को पकड़ कर अर्जुन ने जब उनको वेगपूर्वक घुमाया तो भिल्लस्वरूप भगवान् शिव हंसने लगे ॥

पादग्रहाच्छंकर आशुतोषः
तं दर्शयामास निजं स्वरूपम् ।
वेदेषु शास्त्रेषु पुराणमध्ये
ध्यानाय यच्चोक्तमृषीन्द्रवर्यैः ॥४०॥

पैर पकड़ने पर आशुतोष शंकर ने अर्जुन को अपना वह रूप दिखाया जिसका वर्णन ऋषियों ने वेदपुराणादि शास्त्रों में किया है ॥

सत्यं शिवं सुन्दरमद्भुतं सः
विलोक्यरूपं किल भिल्लवर्ये ।
अहो शिवोऽयं न च भिल्ल एषः
स्वमायया मोहितवानयं माम् ॥४१॥

उस सुन्दर अद्भुत रूप को देखकर अर्जुन ने कहा कि अहो, ये भिल्ल नहीं अपितु शिव हैं । इन्होंने अपनी माया से मुझे मोहित कर रखा था ॥

हे हे महेश शरणागत दीनबन्धो
सिन्धो दयासलिलतः परमेश्वराख्य ।
मामुद्धराशु विपदब्धिनिमग्नं
लग्नं तटे तव कृपातरलैस्तरंगैः ॥४२॥

हे महेश, दीनबन्धो, दया के सागर ! दुःखसागर में निमग्न मेरा आप शीघ्र ही उद्धार करें और अपनी कृपा की तरंगों से तट पर पहुंचायें ॥

चिरं शून्येऽरण्ये स्थितमवसरोद्वीक्षणधिया
कदीशानामग्रे बहुलतरमाप्तः परिभवः ।
गतः सर्वो गर्वः शिव सकलधैर्यं व्यपगतं
इमं दीनं हीनं कुरु निजजनं स्वीयकृपया ॥४३॥

इस क्रूर अरण्य में अवसर प्राप्ति की इच्छा से तुच्छ दुर्योधनादि के सामने बहुत अवमानना हुई है। हे शिव, मेरा सारा गर्व नष्ट हो गया है। अब इस दीन-हीन जन को कृपा करके अपना बना लें ॥

प्रगृह्य पादौ प्रणनाम तं स
क्षमापयामास निजापराधम्।
न खिद्यतां पार्थ ममासि भक्तो
मयापरीक्षार्थ मिदं कृतं ते ॥४४॥

अर्जुन ने यह कह कर शिव के चरणों में प्रणाम किया और अपना अपराध क्षमा करने के लिए कहा। शिव ने कहा—हे पार्थ, तुम खेद नहीं करो। यह सब मैंने परीक्षा लेने के लिए किया था ॥

वरं वृणीष्वाद्य यदीप्सितं ते
दास्यामि सर्वं ह्यपि चाह शम्भुः।
स चाह शम्भो खलु दर्शनात्ते
कष्टं समस्तं प्रययौ तथापि ॥४५॥

शिव ने कहा कि तुम अपना इच्छित वर मांग लो। अर्जुन ने कहा कि आपके दर्शनमात्र से ही मेरे समस्त दुःख दूर हो गये हैं। तथापि—

ब्रवीमि किं नाथ उपस्थितं नो
भयं प्रभूतं विकटारि जन्यम्।
तेषां जयार्थं किमपि स्वशस्त्रं
वरं जयार्थं च प्रदेहि देव ॥४६॥

हे नाथ, मैं क्या कहूँ, मुझे शत्रुओं से भय है। उनको जीतने के लिए [illegible] मुझे शस्त्र प्रदान करें तथा विजय का वर दें ॥

स चाह वीरार्जुन संशृणुष्व
इदं च पाशूपतमस्त्रवर्यम् ।
ददामि तुभ्यं सकलारिजैत्रं
जयोऽस्तु ते मे वर एष वोध्यः ।।४७।।

शिव ने कहा, हे अर्जुन, समस्त शत्रुओं को जीतने वाला यह पाशुपत अस्त्र मैं तुझे प्रदान करता हूँ। तुम्हारी विजय होगी, यह वर भी देता हूँ ।।

अधिगत्य जगत्यधीश्वरात्
खलु तं पाशुपतं महेश्वरात् ।
न गिरोऽपि च गोचरोऽथ यः
सतमानन्दमविन्दतार्जुनः ।।४८।।

जगदीश्वर महेश्वर से पाशुपतास्त्र प्राप्त करके अर्जुन महान् आनन्दित हुए ।।

तदैव कालेऽन्तरधान्महेशः
धृत्वा च तस्योपरि दक्षहस्तम् ।
ततोऽर्जुनश्चापि परं प्रहृष्टो
गत्वा स्वबन्धून् मुदितांश्चकार ।।४९।।

अर्जुन के सिर पर हाथ रखकर शिव अन्तर्धान हो गये और अर्जुन भी प्रसन्न होकर अपने भाइयों के पास चले गये और उनको आनन्दित किया ।।

युधिष्ठिरस्तं विजयं ह्युवाच
कृष्णोऽपि तं चागतमालिलिंग ।
द्रौपद्यपि प्रीततरा बभूव
येन श्रुतं सोऽपि प्रसीदतिस्म ।।५०।।

युधिष्ठिर ने उनको विजय का आशीर्वाद दिया। कृष्ण ने उनका आलिंगन किया। द्रौपदी भी अति प्रसन्न हुई और जिसने भी सुना वह प्रसन्न ही हुआ ॥

गतवान् षोडशः सर्गोऽवतारचरितात्मकः।
चतुर्दशप्रबन्धानां भ्रातुश्चैतस्य काव्यस्य ॥५१॥

चौदह प्रबन्धों के भ्राता इस काव्य में अवतार वर्णनात्मक यह सोलहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
शिवावतारवर्णनात्मकः
षोडशः सर्गः ॥

अथ शिवसूर्यशतनामात्मकः

सप्तदशः सर्गः

—०—०—

एकदा भगवान् विष्णुः देवानां विजयेच्छया ।
सहस्रनामभिर्देवं शंकरं समतोषयत् ॥१॥

एक बार भगवान् विष्णु ने देवताओं की विजय की इच्छा से सहस्र नामों के जप से भगवान् शंकर की स्तुति की ॥

श्रुत्वा तानि प्रसन्नोऽभूत् शंकरः करुणाकरः ।
विष्णुना याचितं शस्त्रं सुदर्शनमदात्ततः ॥२॥

इन नामों के श्रवण से प्रसन्न होकर शंकर ने विष्णु द्वारा मांगे गये सुदर्शन नामक शस्त्र को प्रदान किया ॥

भगवान् विष्णुरादाय तेन दैत्यान् जघान ह ।
जगत्स्वस्थमभूत्सर्वं प्रसन्नमभवन्नभः ॥३॥

भगवान् विष्णु ने उस शस्त्र को प्राप्त करके दैत्यों का वध किया, जिससे समस्त जगत् और आकाश प्रसन्न हो गये ॥

शिवो हरो मृडो रुद्रः शर्वः शम्भुर्महेश्वरः ।
चन्द्रापीडो चन्द्रमौलिः कपाली नीललोहितः ॥४॥

गौरीभर्ता अष्टमूर्तिर्देवदेवः त्रिलोचनः ।
वामदेवो महादेवो वृषांको वृषवाहनः ॥५॥

ईशः पिनाकी खट्वांगी चित्रवेशः चिरन्तनः ।
कालकालः कृत्तिवासाः गिरीशो गिरिजाधवः ॥६॥

कुवेरबन्धुः श्रीकण्ठः शितिकण्ठः कपालभृत् ।
उग्रः पशुपतिः दिव्यः कपर्दी कामशासनः ॥७॥

शिवः श्मशाननिलयो भस्मोद्धूलितविग्रहः ।
भश्मप्रियो भश्मशायी त्र्यम्बकः त्रिपुरान्तकः ॥८॥

व्याघ्र चर्माम्बरो व्याली जितकामो जितेन्द्रियः ।
उन्मत्तवेशः प्रच्छन्नो ललाटाक्षः त्रिशूलभृत् ॥९॥

कैलासाधिपतिश्चैव नीलकण्ठः परश्वधीः ।
कामारिः कामदहनः जन्ममृत्युजरातिगः ॥१०॥

पिंगलाक्षश्च त्र्यक्षो नीलग्रीवो विभूतिधृक् ।
अन्धकारिर्महाविघ्नः पुरारिर्दक्ष नाशकः ॥११॥

कैलास शिखरावासी भूतपालो भवस्तथा ।
विषमाक्षो विरूपाक्षो वृषदो वृषवर्धनः ॥१२॥

ईशान ईश्वरः शूली जटी भीमश्च कुण्डली ।
महेष्वासो भूतिवेषो गंगाधर उमापतिः ॥१३॥

गजासुरनिहन्ता च शंखचूडविनाशकृत् ।
गणेशस्यपिता चैव स्कन्दस्य जनकस्तथा ॥१४॥

काशीपतिः शूलपाणिः अर्धनारीश्वरस्तथा ।
जलन्धरारिः त्रिपुरारिः द्रोणाचार्यवरप्रदः ॥१५॥

रावणस्यमदोन्माथी वाणासुरसहायकः ।
दुन्दुभ्यरिर्ब्रह्मपुत्रः विष्णुपौत्रो विभूतिमान् ॥१६॥

पार्वत्या ब्रह्मचारी च किरातेश्वर एव च ।
एतानि शतनामानि पुमान्प्रातः सदा पठेत् ॥१७॥

शम्भोः शताभिधानानि पठित्वेमानि मानवः ।
लभते स्वेप्सितं नूनं शांकरो हि वरोह्यसौ ॥१८॥

(भगवान् शंकर के इन सौ नामों को पढ़कर मानव मनोवांच्छित फल प्राप्त करता है) ॥

एकदा नेत्ररोगेण जातोऽहं बहुपीडितः ।
कृत्वेदं सूर्यशतकमभूवं रोगवर्जितः ॥१६॥

एक वार मैं नेत्र-रोग से वहुत पीड़ित हो गया, तब मैं (ग्रन्थकर्ता) निम्न सूर्यशतक बनाकर रोगमुक्त हो गया ॥

आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयन्तु विभाकरः ।
तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं च प्रभाकरः ॥२०॥

पंचमं च सहस्रांशुः षष्ठं चैव त्रिलोचनः ।
सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं च विभावसुः ॥२१॥

नवमं दिनकृत्प्रोक्तं दशमं द्वादशात्मकः ।
एकादशं त्रयीमूर्तिः द्वादशं सूर्य एव च ॥२२॥

त्रयोदशं शिवानाथः सप्तसप्तिः चतुर्दशम् ।
पंचदशं पतङ्गश्च षोडशन्तु दिवाकरः ॥२३॥

चित्रभानुः सप्तदशं तमोघ्नोऽष्टादशं स्मृतम् ।
एकोनविंशं तरणिः हरिदश्वश्च विंशकम् ॥२४॥

अंशुमानेकविंशं च द्वाविंशं सविता स्मृतम् ।
तेजोराशिः त्रयोविंशं चतुर्विंशं दिवस्पतिः ॥२५॥

पंचविंशं जगन्नाथः षड्विंशं च जगत्प्रियः ।
सप्तविंशं जगन्नेत्रं अष्टाविंशं युगादिकृत् ॥२६॥

एकोनत्रिंशं मार्तण्डः त्रिंशत्तम कल्पकृन्मतः ।
विश्वमूर्तिः एकत्रिंशं, द्वात्रिंशं वर्चसोज्वलः ।।२७।।

त्रयस्त्रिंशं युगावर्तः चतुस्त्रिंशं गभस्तिमान् ।
पंचविंशं स्वर्णरेताः षट्विंशं तेजसांपतिः ।।२८।।

सप्तविंशं रश्मिमाली अष्टत्रिंशं विहङ्गमः ।
ऊनचत्वारिंशमर्कः चत्वारिंशं तथा भगः ।।२९।।

एकचत्वारिंश रविः द्विचत्वारिंशकं घृणिः ।
त्रिचत्वारिंशकं पूषा चतुः चत्वारिंश मित्रः ।।३०।।

पंचचत्वारिंशकालः षट्चत्वारिंशमीश्वरः ।
सप्तचत्वारिंशमीनः अष्टचत्वारिंशहेलिः ।।३१।।

प्रांशुरेकोनपंचाशं पंचाशं च किरीटी च ।
एकपंचाशकं प्रोक्तं स्थावरजंगमात्मकः ।।३२।।

द्विपचांशात्तमं द्योतः त्रिपंचाशत्तमं त्वष्टा ।
चतुः पंचाशकं व्रध्नः पंचपंचाशकं भर्गः ।।३३।।

षट्पंचशत्तमं स्रग्वी सप्तपंचाशकं भानुः ।
अष्टपंचाशकं प्रोक्तं महतामीश्वरेश्वरः ।।३४।।

सप्तजिह्वः षष्टितमं एकषष्टितमं खगः ।
तेजस्वी द्विषष्टितमं त्रिषष्टितममाशुगः ।।३५।।

चतुः षष्टितमं नेता पंचषष्टितमं रथी ।
सुवर्चाः षट्षष्टितमं सप्तषष्टितमं विराट् ।।३६।।

अष्टषष्टितमं राजा ऊनसप्ततितमं दक्षः।
सप्तार्चिः सप्ततितमं एकसप्ततिकं सुषाक् ॥३७॥

द्विसप्ततिममं हंसः त्रिसप्ततितमं प्रभुः।
चतुः सप्ततिकं दीपः पंचसप्ततिकं ध्रुवः ॥३८॥

षट्सप्ततितमं मेषी सप्तसप्ततिकं गुहः।
अष्टसप्ततिकं गोमान् ऊनसप्ततितमं कम्रः ॥३९॥

विरोचनोऽशीतितमं एकाशीतितमं सम्राट्।
वर्चस्वी ह्यशीतितमं त्र्यशीतितमं ग्रहाधीशः ॥४०॥

चतुरशीतितमं विप्रः पंचाशीतितमं विद्वान्।
धर्मोऽष्टाशीतितमं ऊननवतितमं सूरः ॥४१॥

चण्डांशुर्नवतितमं ऊननवतितमं शुचिः।
स्वर्णो द्विनवतितमं • त्रिणवतितमं विभ्राट् ॥४२॥

चतुर्णवतितमं भास्वान् पंचनवतितमं हरिः।
विवस्वान् षण्णवतितमं सप्तनवतितमं कविः ॥४३॥

तपनोऽष्टनवतितमं ऊनशततमं कल्पः।
रोगहन्ता शततमं एकशततमं सुखी ॥४४॥

एषां नाम्नां पाठकर्तुः नेत्ररोगः प्रणश्यति।
आरोग्यं भास्करादिच्छेत् श्रुतेरपिमतेत्विदम् ॥४५॥

वेदा यं परमात्मानं वदन्ति
त्वंचैवात्मा जगतः तस्थुषश्च।

प्रातः सायं ब्राह्मणा यं स्तुवन्ति
स श्रीसूर्योह्यस्तुनः सुप्रसन्नः ॥४६॥

शताभिधानानिरवेरिमानि
निपीय सम्यक् अमृतोपमानि ।
यथादरं कुर्वंत ईननाम्नां
तथादरं नो विवुधाः सुधायाः ॥४७॥

जिस सूर्य को वेद जगदात्मा कहते हैं, ब्राह्मण लोग प्रातः-सायं स्तुति करते हैं वह सूर्य भगवान् हमारे-तुम्हारे पर प्रसन्न हों ॥

गतः सप्तदशः सर्गः शिवसूर्यशतात्मकः ।
चतुर्दशप्रबन्धानां भ्रातुश्चैतस्य काव्यस्य ॥४८॥

चौदह प्रवन्थों के भ्राता इस काव्य में शिवसूर्यशतनामात्मक यह सत्रहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
शिवसूर्यशतनामात्मकः
सप्तदशः सर्गः ॥

अथ शिवसाहित्यवर्णनात्मकः

अष्टादशः सर्गः

—०—०—

गन्धर्वाणामधिपतिः पुष्पदन्तो महामतिः।
स्तोत्रं शिवमहिम्नाख्यं चक्रे कृतयुगेऽद्भुतम् ॥१॥

गन्धर्वों के अधिपति पुष्पदन्त ने सत्ययुग में शिवमहिम्न नामक स्तोत्र की रचना की ॥

त्रेतायां रावणो नाम शिवभक्तशिरोमणिः।
प्रणिनायाद्भुतं स्तोत्रं शिवताण्डवनामकम् ॥२॥

त्रेतायुग में शिवभक्त शिरोमणि रावण ने शिवताण्डव नामक स्तोत्र की रचना की ॥

व्यासो देवीस्कन्दलिङ्गपुराणं द्वापरेऽकरोत्।
सप्तभिः संहिताभिश्च तथा शिवपुराणकम् ॥३॥

व्यास ने देवी-पुराण, स्कन्द-पुराण तथा लिङ्ग-पुराण की रचना की, तथा सात संहिता वाले शिवपुराण की रचना की ॥

चतुर्दश समाश्रित्य शिवसूत्राणि पाणिनिः।
कलेः षड्विंशशतके निजं व्याकरणं व्यधात् ॥४॥

चौदह शिव-सूत्रों का आश्रय लेकर पाणिनि ने कलियुग के छब्बीसवें शतक में अपना व्याकरण बनाया ॥

वैक्रमे पञ्चमशते कालिदासोमहाकविः।
कुमारसंभवं चक्रे यत्र षण्मुखवर्णनम् ॥५॥

विक्रम संवत् के पांचवें शतक में महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव की रचना की जिसमें कार्त्तिकेय का वर्णन है ॥

वैक्रमेपंचमशते तंत्रग्रन्थमनुत्तमम् ।
वेतालभट्टः कृतवान् रुद्रयामलनामकम् ॥६॥

विक्रम के छठे शतक में वेतालभट्ट ने रुद्रयामल नामक श्रेष्ठ तन्त्र-ग्रन्थ की रचना की ॥

वैक्रमे सप्तमशते बाणभट्टो महाकविः ।
श्रीपार्वतीपरिणयं नाटकं दिव्यमातनोत् ॥७॥

सातवें शतक में महाकवि बाणभट्ट ने पार्वती-परिणय नामक नाटक की रचना की। कुछ विद्वान् इसको किसी दूसरे बाण की रचना बताते हैं ॥

वैक्रमे चाष्टमशते शंकराचार्य आतनोत् ।
शिवानन्दाख्यलहरीं सौन्दर्यलहरीं तथा ॥८॥

आठवें शतक में आद्य शंकराचार्य ने शिवानन्द-लहरी तथा सौन्दर्य-लहरी की रचना की ॥

वैक्रमे नवमशते कर्णाटकमहीसुरः ।
श्रीकण्ठो ब्रह्मसूत्राणां शैवभाष्यमकल्पयत् ॥९॥

नवें शतक में कर्णाटकवासी श्रीकण्ठ ने ब्रह्मसूत्रों पर शैवभाष्य लिखा ॥

दशमे वैक्रमशते रत्नाकरमहाकविः ।
पंचाशत्सर्गसहितं हरस्यविजयं व्यधात् ॥१०॥

दसवें शतक में महाकवि रत्नाकर ने पचास सर्गात्मक हर-विजय महाकाव्य बनाया ॥

वैक्रमे द्वादशशते श्रीकण्ठचरितं व्यधात् ।
श्रीमंखको महाशैवः काश्मीरिकमहाकविः ॥११॥

बारहवें शतक में कश्मीरी महाकवि मंखक ने श्रीकण्ठचरित काव्य बनाया ॥

त्रयोदशे शते चक्रे महाकविजयद्रथः ।
हरचिन्तामणिं काव्यं स्वल्पवृत्तैरलंकृतम् ॥१२॥

तेरहवें शतक में महाकवि जयद्रथ ने छोटे वृत्तों से सुशोभित हर-चिन्तामणि काव्य की रचना की ॥

चतुर्दशशते श्रीमान् जगद्धरमहाकविः ।
स्त्रोत्रकाव्यं स्तुतिकुसुमांजलीत्याख्यकं व्यधात् ॥१३॥

चौदहवें शतक में महाकवि जगद्धर ने कुसुमांजलि नामक स्तोत्र-काव्य की रचना की ॥

शैवोऽभिनवगुप्तश्चाप्पयदीक्षित एव च ।
स्वस्वग्रन्थान् व्यतनुतां शैवविद्वन्मनोहरान् ॥१४॥

अभिनवगुप्त और अप्पय दीक्षित ने शैव विद्वानों के मन को हरने वाले अपने-अपने ग्रन्थों की रचना की ॥

शतेचाष्टादशे चक्रे नीलकण्ठो महाकविः ।
श्रीनीलकण्ठविजयं शिवलीलार्णवं तथा ॥१५॥

अठारहवें शतक में महाकवि नीलकण्ठ ने नीलकण्ठ-विजय तथा शिव-लीलार्णव ग्रन्थ बनाये ॥

एकविंशशते चक्रे प्रभुदत्तेन शास्त्रिणा ।
गणेशसम्भवं काव्यं गणेशचरितात्मकम् ॥१६॥

इक्कीसवें शतक में दिल्ली निवासी पं० प्रभुदत्त शास्त्री ने गणेश के चरित्र का वर्णन करने वाला गणेशसंभव नामक काव्य बनाया ॥

काव्यं शिवकथामृतं परशुरामजयं मया।
दुर्गाभ्युदयनाट्यं च एकविंशशते कृतम् ॥१७॥

शिवशिष्य परशुराम-विजय काव्य तथा शिवकथामृतमहाकाव्य और दुर्गाभ्युदयनामक नाटक मैंने भी इक्कीसवें शतक में बनाये ॥

दुर्गाभ्युदयनाट्यस्यजीवनरामशास्त्रिणा ।
मत्पुत्रेण कृता टीका एम.लिट्पदधारिणा ॥१८॥

दुर्गाभ्युदय नाटक की टीका मत्पुत्र जीवनराम शास्त्री एम. लिट् ने लिखी ॥

पर्शुरामजयेकाव्येएमएपदधारिणा ।
मच्छिष्येण कृता टीका प्रकाशाख्येन शास्त्रिणा ॥१९॥

परशुराम विजय पर हमारे शिष्य प्रकाश शास्त्री एम. ए. ने टीका लिखी ॥

मयाधीत्य महाभाष्यं कौमुदीं शेखरं श्रमात्।
निरुक्तं न्याव साहित्ये दर्शनानि तथैव च ॥२०॥

मैंने सिद्धान्तकौमुदी, महाभाष्य, शब्देन्दुशेखर और निरुक्त-इत्य न्याय, साहित्य तथा दर्शनों का अध्ययन करके—

न्यायमुक्तावली टीका वृत्तिश्च न्यायदर्शने।
द्वयाह्निकस्य च भाष्यस्य कौमुद्या विवृतिस्तथा ॥२१॥

कुरुक्षेत्रीयमाहात्म्यवेदान्तसारयोरथ ।
टीकाद्वयं वैदिकस्य निरुक्तस्य च बोधिनी ॥२२॥

टीका काव्यप्रकाशस्य मूलार्थस्य प्रकाशिका।
साहित्यबिन्दुरथ च दुर्गाभ्युदय नाटकम् ॥२३॥

कर्मकाण्डपद्धतिश्च तथैव योगमंजरी।
एते ग्रन्थाः कृताः पूर्वमस्य ग्रन्थस्य निर्मितेः ॥२४॥

यदलम्भि किमपि पुण्यं ग्रन्थानां लेखनेनैषाम्।
तत्सर्वमर्पितं मे गौरीशंकरपदांभोजे ॥२५॥

न्यायमुक्तावली की टीका, न्यायदर्शन की वृत्ति, महाभाष्य के दो आह्निकों की टीका, लघुकौमुदी की मूल में ही रूप साधनिका, कुरुक्षेत्र माहात्म्य, वेदान्तसार की टीका, निरुक्त की बोधिनी टीका, काव्यप्रकाश की मूलार्थप्रकाशिका टीका, साहित्यबिन्दु, दुर्गाभ्युदय नाटक, कर्मकाण्ड पद्धति, योगदर्शन की टीका, योगमंजरी ये ग्रन्थ इस प्रस्तुत कृति से पूर्व बनाये। इनके निर्माण से जो पुण्य मुझे प्राप्त हुआ है वह मैंने भगवान् गौरीशंकर के चरणों में अर्पित कर दिया॥

भासते भास्करो यावत् यावच्चंदति चन्द्रमाः।
तावन्मनोविनोदाय कृतयः सन्तु मत्कृताः ॥२६॥

जब तक सूर्य एवं चन्द्रमा प्रकाशित हों तब तक मेरे द्वारा रचित ग्रन्थ विद्वानों का मनोविनोद करते रहें॥

छज्जूरामकृतावस्यां नैकः श्लोकः स दृश्यते।
अल्पानल्पाऽथवा काचित् यत्र नैव चमत्कृतिः ॥२७॥

छज्जूराम द्वारा निर्मित इस कृति में ऐसा कोई भी श्लोक नहीं है जिसमें थोड़ी बहुत चमत्कृति न हो॥

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि शिववैभववर्णनात्।
व्यासस्यैवप्रसादोऽयं सफलोयन् ममश्रमः ॥२८॥

शिव का वर्णन करके मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया हूँ। वस्तुतः यह कृत्ति शिव के प्रसाद का ही फल है, जिससे मेरा श्रम सफल हो गया॥

जगद्धरकवेः स्मृत्वा वाणीः श्रीकण्ठवर्णिनीः ।
जिह्वान्तःकृष्यमाणेव हठादत्रप्रवर्तिता ॥२६॥

जगद्धर कवि की शिव-चरित्र का वर्णन करने वाली वाणी का स्मरण करके आकृष्यमाण जिह्वा यहां बड़ी कठिनता से प्रवृत्त की है ॥

पश्यामि बाणादिकवेः कृतिं चेद्
गीर्वाणवाण्याः अवसान मेमि ।
अन्तः प्रविश्येदमवेक्षितं यत्
कोणे प्रविष्टाः शतशः कवीन्द्राः ॥३०॥

जब हम बाण आदि कवियों की रचनाओं का अवलोकन करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो देववाणी अपनी चरम सीमा को प्राप्त हो गई है। किन्तु जब प्रयत्नपूर्वक गहराई में देखते हैं तो ऐसे सैकड़ों कवि एक कोने में पड़े प्रतीत होते हैं ॥

नान्यत् पुण्यतमं समस्तजगति क्षेत्रं कुरुक्षेत्रतः
नास्ति श्लाध्यतरः समस्तविबुधेषु श्रीलशम्भोः परः ।
नान्यः सम्प्रति छज्जूराम सदृशो विद्वत्सुशैवः कविः
त्र्य्येषा जयतात्स्वकीय यशसा यावत् क्षितौ जाह्नवी ॥३१॥

इस पृथ्वी में कुरुक्षेत्र से अधिक पवित्र कोई स्थान नहीं है। देवताओं में शम्भु से अधिक श्लाघ्य कोई अन्य देवता नहीं है। सम्प्रति छज्जूराम के सदृश कोई विद्वानों में शैव कवि नहीं है। जब तक पृथ्वी पर गंगा विद्यमान है तब तक वे तीनों अपने यश के कारण विद्यमान रहें ॥

यदि शिवस्तवने सरसं मनो
यदि विनोदयसे चरितैः विभोः ।
यदमृतस्वदनेऽवितथा स्पृहा
तदुपकर्णय-शैवकथा इमाः ॥३२॥

यदि शिव के स्तवन की इच्छा है, यदि ईश्वर के चरित्र से मनोविनोद करने की कामना है, यदि अमृत पान करने का मन है तो शिव की इस कथा को सुनें ॥

यातास्तं हि गुणज्ञता समुदितो भूयानसूयाभरः
कालोऽयं कलिराजगाम महतां बुद्धेरपि भ्रामकः ।
अस्त्येका विनयाधिका तव पुरः शंभोममाभ्यर्थना
मद्ग्रन्थस्य रहस्य वेदन परः कोऽप्यस्तु धीरः सदा ॥३३॥

अर्थ स्पष्ट है ॥

क्वेदं पवित्रचरितं भगवच्छिवस्य
क्वाफ्रीकपेरिसं गमादहमंसाढ्यः ।
या वाल्मिकेर्भगवतश्चरितेन शुद्धिः
सा मेऽपि किन्न शिववर्णनयाऽनयास्यात् ॥३४॥

कहां तो भगवान् शिव का यह पवित्र चरित्र तथा कहां अफ्रीका तथा पेरिस जाने से उत्पन्न कलुष से युक्त मैं (शास्त्रों में समुद्र पार गमन को प्रशस्त नहीं माना गया है) तथापि भगवान् राम के चरित्र वर्णन से जो शुद्धि वाल्मीकि ऋषि की हुई वैसी शुद्धि इस शिवचरित्र का वर्णन करने से मेरी भी होगी ॥

न्यायादयश्च विषयाः स्मृतितः प्रयाताः
सा व्याकृतिश्च पठिता कठिनक्रमेण ।

एकैवशैवपदपंकजसंस्मृतिर्मे
अद्यापि तिष्ठति मनोधिपतित्वरूपा ॥३५॥

इस अवस्था में न्याय आदि विषय विस्मृत हो गये हैं, जिस व्याकरण को कठिन श्रम से पढ़ा था, वह भी विस्मृत हो गया। इस समय तो सर्वतोभावेन भगवान् शिव के चरण कमलों की स्मृति ही मेरे मन में विद्यमान है ॥

हठादाकृष्टानां कठिनवचनानां रचयिता
कविः स्पर्धालुः चेत्सरसवचसानेन कविना।
ततो नूनं स्याद्दै सुवच पदप्राप्तौ च कलहः
कटूक्तेः काकस्य सरसवचसश्चापि पिकतः ॥३६॥

हठपूर्वक इधर-उधर से लेकर कुछ कठिन शब्दों का जोड़ने वाला कवि यदि सरस कविता करने वाले मुझसे स्पर्धा करेगा तो निःसन्देह कटु भाषी काक और सरस भाषी कोयल का भी विवाद हुआ करेगा ॥

जीन्दपुर्या रविक्रोशे जामणीग्रामनामकः।
यत्र पूर्वं तपस्तप्तं जमदग्निमुनीश्वरः ॥३७॥

जीन्द नगर से पूर्व की ओर बारह कोस पर जामणी ग्राम है, यहां महर्षि जमदग्नि ने तप किया था ॥

तस्मात्क्रोशत्रये चास्ति रिटोलीग्रामकोमम।
यत्र चूडामणौ तीर्थे वर्तते शिवमन्दिरम् ॥३८॥

जामणी ग्राम से उत्तर की ओर दो कोस पर हमारा रिटोली ग्राम है। वहां चूड़वाला तीर्थ पर शिव-मन्दिर है ॥

गोभक्तः पण्डितश्चासीत् हरनाथः प्रपितामहः।
तस्य पुत्रौ विहारी च फकिचन्द्रः तथैव च ॥३९॥

हमारे प्रपितामह गोभक्त पं० हरनाथ हुए। उनके दो पुत्र थे—पं० बिहारीलाल और फकीरचन्द्र ॥

फकिचन्द्रसुता जाता मत्पितामोक्षरामकः।
मनसाराम नन्हुरामौ शिवदत्तश्च पण्डितः ॥४०॥

फकीरचन्द्र के चार पुत्र हुए—मोक्षराम, मनसाराम, नन्हुराम और पं० शिवदत्त ॥

अत्र ग्रामे भुवं क्रीत्वा गृहं कृत्वा च सुन्दरम्।
पूजयन्तिस्म ते सर्वे शंकरं लोकशंकरम् ॥४१॥

उन्होंने रिढौली में भूमि खरीदकर गृह बनवाया और सदा शंकर की पूजा की ॥

मद्भ्रातरो मूलचन्द्रश्रीनेकीरामकृष्णकाः।
मत्पुत्राः सुशील सोम जीवनरामशास्त्रिणः ॥४२॥

प्यारे भाई मूलचन्द, नेकीराम तथा रामकृष्ण हैं और पुत्र सुशील सोम तथा जीवनराम हैं ॥

अत्रसर्वे विप्रवर्या धनिनो मानिनस्तथा।
विद्वांसः शास्त्रिवर्याश्च मच्छिष्या ममपुत्रकाः ॥४३॥

इस ग्राम में सौ घर ब्राह्मणों के हैं जो सभी धनी-मानी हैं, और हमारे शिष्य ज्ञानीराम शास्त्री, रामकृष्णादि, तथा पुत्र जीवनराम शास्त्री एम.लिट्. आदि विद्वान् एवं शास्त्री हैं ॥

अयं ग्रामः कुरुक्षेत्रे पवित्रे विद्यते मम।
चत्वारिंशत्क्रोशमिते श्रुतिस्मृतिषुकीर्तिते ॥४४॥

यह ग्राम कुरुक्षेत्र भूमि में है, कुरुक्षेत्र भूमि ४० क्रोशात्मक है, कुरुक्षेत्र भूमि के सम्बन्ध में लिखा है—"अत्रहजन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु

तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति"। शुक्लयजुर्वेद के भी "यज्ञेनयज्ञमयजन्तदेवाः" इस मन्त्र की व्याख्या करता हुआ शतपथ ब्राह्मण कहता हैं —"कुरुक्षेत्रं वै देवानां देवयजनमास"। मनुस्मृति में कहा है—"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः"॥ मनु का व्याख्याकार कुल्लूकभट्ट—'एतद्देश प्रसूतस्य' की व्याख्या 'ब्रह्मक्षेत्र प्रसूतस्य' लिखता है। गौडपादाचार्य ने लिखा है— "आद्यौये ब्राह्मणाजाता ब्रह्मक्षेत्रे तपोधनाः। ब्रह्मक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं ब्रह्मदेशो निगद्यते"॥

यत्र स्वर्गस्तु किं वस्तु मोक्षः कायस्य मोक्षणात्।
पवित्रंतत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले॥४५॥

जिस कुरुक्षेत्र के सामने स्वर्ग भी तुच्छ है, जहां शरीर छोड़ने मात्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है, उस पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो॥

यत्र ब्रह्मादयोदेवाः तपन्तिस्म परन्तपः।
पवित्रं तत् कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले॥४६॥

जहां ब्रह्मादि देवों ने भी घोर तप किया था उस पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो॥

साचारो वाप्यनाचारो मृतो यत्र च मुक्तिभाक्।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले॥४७॥

सदाचारी हो या दुराचारी, जहां पर मृत्यु होने मात्र से मनुष्य मुक्ति का अधिकारी हो जाता है उस पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो॥

स्वंस्वंचरित्रं ज्ञातव्यंयत्रजाताग्रजातसमैः।
पवित्रंतत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले॥४८॥

जहां उत्पन्न हुए ब्राह्मणों से सब लोकों ने अपना-अपना कर्तव्य सीखना चाहिये, उस कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो ॥

यत्राभूद् भारतं भागवतं वेदपुराणकम् ।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ॥४९॥

जहाँ सरस्वती के तट पर बैठकर वेदव्यास ने महाभारत, गीता, भागवत और वेद तथा अठाहर पुराण बनाये, उस कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो ॥

यत्रानेकानि तीर्थानि सप्तनद्योवनानि च ।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ॥५०॥

जहां छोटे मोटे रामह्लद पिण्डारकादि शताधिक तीर्थ, सरस्वती दृषद्वती आदि सात नदियाँ और काम्यक व्यासादि सात ही वन प्रसिद्ध हैं, उस कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो । यह सब जानने के लिये पूज्यपाद गुरुजी का 'कुरुक्षेत्रमाहात्म्य' देखें ॥

ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ।
पवित्रं तत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ॥५१॥

जो लोक पवित्र कुरुक्षेत्र भूमि में निवास करते हैं, वे स्वर्ग में निवास करते हैं । महाभारत में यह भी लिखा है—"कुरुक्षेत्रे गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् । यस्यात् सततं ब्रूयात्सोपि पापैः प्रमुच्यते ।' ऐसी कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो ॥

यत्र क्षेत्रे त्रिधामुक्ति रन्तरिक्षे जले स्थले ।
पवित्रंतत्कुरुक्षेत्रं जयताज्जगतीतले ॥५२॥

जहां अन्तरिक्ष (घर के ऊपर) जल के भीतर और किसी भी स्थल में मृत्यु होने पर मुक्ति हो जाती है उस कुरुक्षेत्र भूमि की जय हो ॥

कुरुक्षेत्राष्टकं चैतत्प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
कुरुक्षेत्रे मृतिं प्राप्य पुनरुत्पद्यते न सः ॥५३॥

जो प्रातःकाल उठकर इस हमारे कुरुक्षेत्राष्टक का पाठ करेगा वह कुरुक्षेत्र भूमि में मरकर जन्म-मरण से छूट जावेगा ॥

पिण्डारकं वसुक्रोशे तीर्थं मद्ग्रामपश्चिमे ।
यत्रादुः पाण्डवाः पिण्डानमायां सोमवासरे ॥५४॥

हमारे रिटोली ग्राम से आठ कोस पर पश्चिम की ओर पिण्डारक तीर्थ है, जहां सोमवती अमावस्या के दिन पाण्डवों ने अपने पित्रों के लिये पिण्डदान किया था। यहाँ रतिराम जी का तथा लज्जाराम जी का स्थान प्रसिद्ध हैं। संस्कृत पाठशालायें भी हैं। प्रत्येक अमावस्या को खास कर सोमवती को यहां बड़ा भारी मेला लगता है ॥

सपीदमं वसुक्रोशे मद् ग्रामात् पूर्वतः स्थितम् ।
कृतवान्सर्पदमनं यत्र श्रीजनमेजयः ॥५५॥

हमारे रिटोली ग्राम से आठ कोस पर पूर्व की ओर सफीदम नगर है जहां कलि के द्वितीय शतक में पाण्डवों के पौत्र परीक्षित के पुत्र सम्राट जनमेजय ने बड़ा भारी सर्पदमन-यज्ञ किया था जिसमें वेदव्यास और उनके पुत्र शुकदेव भी सम्मिलित हुए थे ॥

देशेषु भारतं सारं तत्र भारतमुत्तरम् ।
तत्रापिनगरीदिल्ली तत्र सा श्रीयमस्वसा ॥५६॥

सब देशों में भारत देश श्रेष्ठ है, उसमें भी उत्तर भारत वह भी दिल्ली उसमें भी यमुना माई। महाभारत में लिखा है—"गंगा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती। अतिपुण्यतमा राजन् इन्द्रप्रस्थे यमस्वसा ॥

पुष्पेषु मल्ली नगरेषु दिल्ली
वेदेषु साम क्षितिपेषुरामः ।
विद्वत्कविः प्राग् भवतिस्म हर्षः
एतादृशः सम्प्रति छज्जुरामः ॥५७॥

पुष्पों में मल्लिका और नगरों में दिल्ली, वेदों में सामवेद और राजाओं में श्रीराम प्रसिद्ध हैं । गीता में भी लिखा है—'वेदानां सामवेदोऽस्मि रामः क्षितिभृतामहम्" । विद्वान् कवियों में जैसे हर्षमिश्र और सम्प्रति हैं वैसे ही छज्जुरामशास्त्री हैं ॥

यातेऽस्तं कवितार्किके कविवरे हर्षे प्रहर्षे सताम्
किं शून्यासि किमाकुलासि कविते भव्यानुप्रासान्विते ।
एतं ग्रन्थकृतं निभाल्य कमपि प्रासादमासादय
सैवास्य प्रतिभा स सूक्तिषु रसः सा नव्यता भव्यता ॥५८॥

कवितार्किक हर्ष कवि के जाने पर हे कविते ! तुम क्यों शून्य और आकुल हो रही हो । इस ग्रन्थकार को देखो और प्रसन्न हो । इस कवि की वही प्रतिभा है और वही कविता रस है, वही नव्यता है और वही भव्यता हैं ॥

दिल्लीस्थ दुर्गेषु च रक्तदुर्गः
तत्सन्निधौ माधवदास नाम्नी ।
वागीचिमध्येवसतिर्ममास्ति
वृत्तिश्च मे भारतसर्वकारात् ॥५९॥

दिल्ली के किलों में लाल किला प्रसिद्ध है, उसके पास ही बगीची माधोदास है उसमें मैं रहता हूँ । भारत सरकार से मुझे वृत्ति मिलती है ॥

वहूनां शिवभक्तानां प्रार्थनान्मेत्विदं कृतम्।
काव्यं त्रिंशे द्विसहस्त्रे विक्रमादित्यवत्सरे ॥६०॥

सेठ व्यासराम सूद, ठाकुर हुशियारचन्द, सेठ कुन्दनलाल, लाजपत राय मार्कीट दिल्ली तथा वावू सुदर्शन, वावू राजेन्द्र, अध्यक्ष मेहरचन्द लछमणदास फर्म दिल्ली की प्रार्थना से मैंने यह काव्य २०३० विक्रमाब्द में लिखा ॥

श्रद्धयैतस्यकाव्यस्य पठनं यः करोति वै।
तस्यायुः शतमैश्वर्यं पुत्रपौत्रादिकं भवेत् ॥६१॥

जो श्रद्धापूर्वक इस काव्य का पठन पाठन करेगा वह सौ वर्ष की आयुः, इप्सित संपत्ति और पुत्र-पौत्रादि को प्राप्त करेगा ॥

अष्टादशो गतः सर्गः शिवसाहित्यवर्णनः।
चतुर्दशप्रबन्धानां भ्रातुः चैतस्यकाव्यस्य ॥६२॥

चौदह प्रवन्धों के भ्राता इस काव्य में शिवसाहित्यवर्णनात्मक यह अठारहवां सर्ग समाप्त हुआ ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्ये
शिवसाहित्यवर्णनात्मकः
अष्टादशः सर्गः ॥

महामहोपाध्यायानां विद्यासागरशास्त्रिणाम्।
गुरूणां छज्जुरामाणां पूर्णया कृपया मया ॥
श्रीनारायणदासस्य प्रकाशाख्येन सूनुना।
टीकेयं रचिता हिन्द्यां हिन्दीज्ञानां हितेच्छया ॥

॥ इति शिवकथामृतमहाकाव्य की
हिन्दी टीका समाप्ता ॥

शुद्धि-अशुद्धि-पत्र

पृष्ठ सं०	श्लोक सं०	अशुद्ध	शुद्ध
३	१४	स्वम्य	स्वस्य
१५	२१	गौतम्यख्याया	गौतम्याख्यया
२२	१	इत्तगुक्त्वा	इत्युक्त्वा
२६	३४	शम्भोममरुद्गणान्	शम्भोमरुद्गणान्
३०	५३	सतीयमाता	सतीयाता
३८	४	अभ्यंकरु	अभयंकर
४२	१८	दिगपु	दिक्षु
५०	११	शिवारत्या	शिवोरत्या
५०	१७	अस्तौषगन्	चातोपयन्
६२	८	कायंकार्य	कार्यंकार्यं
६३	६०	विशारंदेः	विशारदैः
६५	२५	कर्तव्य	कर्तव्यं
७२	४	सव	सर्वे
७४	८	दत्या	दैत्याः
८१	५०	प्रसिद्ध	प्रसिद्धैः
८८	२३	सतः	अतः
१०६	६	प्रमथवृतः	प्रमथैर्वृतः
११५	१२	वाराय	वीराय
११७	७	रक्तोस्तरक्तोस्त	रक्तोस्त
१२८	६	अय	अयं
१३५	१७	स्दव	स्तव
१४४	६	शुचातिखिलाः	शुचातिखिन्नाः
१७६	६	तथामराणां	तत्रामराणां
१८९	२२	तवातिवेगात्	तदातिवेगात्
१९०	१८	विपदब्धिमग्नं	विपदब्धिजले

म० म० छज्जूराम शास्त्री कृत मौलिक एवं सटीक ग्रन्थ

न्यायसिद्धान्तमुक्तावली—सरल संस्कृत टीका	३)
न्यायदर्शन—सरल संस्कृत टीका	२)
वेदान्तसार—सदानन्दीय—सरल संस्कृत टीका	१)
दुर्गाभ्युदयनाटक—जीवनरामशास्त्रीकृत हिन्दी-टीका सहित	२)
साहित्यबिन्दु—जीवनरामशास्त्रीकृत हिन्दी-टीका सहित	२॥)
कुरुक्षेत्रमाहात्म्य—हिन्दी-टीका सहित	१)
विबुधरत्नावलि (संस्कृतका इतिहास)—हिन्दी-टीका सहित	५)
निरुक्तपञ्चाध्यायी—संस्कृत हिन्दी-टीका सहित	७॥)
महाभाष्य—आह्निकद्वय—संस्कृत हिन्दी-टीका सहित	५)
कर्मकाण्ड पद्धति—सटिप्पण	२)
लघुसिद्धान्तकौमुदी—जीवनरामशास्त्रीकृत हिन्दी-टीका सहित	२॥)
परशुरामदिग्विजयमहाकाव्य—हिन्दी-टीका सहित	२)
योगमञ्जरी—हिन्दी-वृत्ति सहित	२)
काव्यप्रकाश—विद्यासागरी संस्कृत-टीका-सहित	(यन्त्रस्थ)

प्राप्तिस्थान—

मेहरचन्द लक्ष्मणदास

स्ट्रीट नं० १, १ अन्सारी रोड

दरियागंज, दिल्ली-११०००६

लिक

३)
२)
१)
२)
२॥)
१)
५)
७॥)
५)
२)
२॥)
२)
२)
(यन्त्रस्थ)